वार्षिक रु. ६०.०० मूल्य रु. ८.००

विवेक • ज्योति

वर्ष ४७ अंक ४ अप्रैल २००९

रामकृष्ण मिशन, विवेकानन्द आश्रम, रायपुर (छ. ग.)
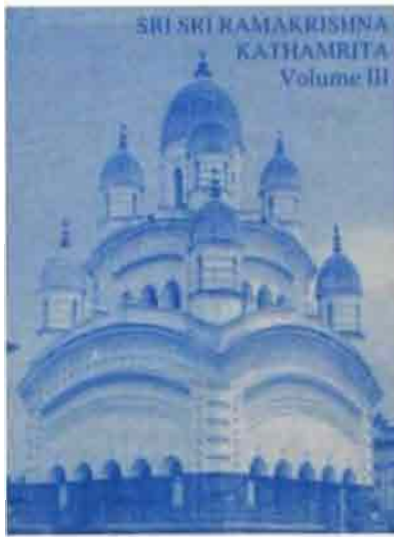
JUST RELEASED

VOLUME III
of
Sri Sri Ramakrishna Kathamrita

in English

A verbatim translation of the third volume of original Bengali edition. Available as hardbound copy at *Rs. 150.00 each* (plus postage Rs. 30.00). Available online at: *www.kathamrita.org*

HINDI SECTION

- **Sri Sri Ramakrishna Kathamrita** — Vol. I to V — Rs. 300 per set (plus postage Rs. 50)

  M. (Mahendra Nath Gupta), a son of the Lord and disciple, elaborated his diaries in five parts of 'Sri Sri Ramakrishna Kathamrita' in Bengali that were first published by Kathamrita Bhawan, Calcutta in the years 1902, 1905, 1908, 1910 and 1932 respectively. This series is a verbatim translation in Hindi of the same.

- **Sri Ma Darshan** — Vol. I to XVI — Rs. 825 per set (plus postage Rs. 115)

  In this series of sixteen volumes Swami Nityatmananda brings the reader in close touch with the life and teachings of the Ramakrishna family: Thakur, the Holy Mother, Swami Vivekananda, M., Swami Shivananda, Swami Abhedananda and others. The series brings forth elucidation of the Upanishads, the Gita, the Bible, the Holy Quran and other scriptures, by M., in accordance with Sri Ramakrishna's line of thought. **This work is a commentary on the Gospel of Sri Ramakrishna by Gospel's author himself.**

ENGLISH SECTION

Title	Volumes	Price
Sri Sri Ramakrishna Kathamrita	Vol. I to III	Rs. 450.00 for all three volumes (plus postage Rs. 60)
M., the Apostle & the Evangelist (English version of Sri Ma Darshan)	Vol. I to X	Rs. 900.00 per set (plus postage Rs. 100)
Sri Sri RK Kathamrita Centenary Memorial		Rs. 100.00 (plus postage Rs. 35)
Life of M. and Sri Sri Ramakrishna Kathamrita		Rs. 150.00 (plus postage Rs. 35)
A Short Life of M.		Rs. 50.00 (plus postage Rs. 20)

BENGALI SECTION

- **Sri Ma Darshan** — Vol. I to XVI — Rs. 650 per set (plus postage Rs. 115)

All enquiries and payments should be made to:

SRI MA TRUST
579, Sector 18-B, Chandigarh – 160 018 India
Phone: 91-172-272 44 60
email: SriMaTrust@yahoo.com

॥ आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च ॥

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

अप्रैल २००९

प्रबन्ध सम्पादक

स्वामी सत्यरूपानन्द

सम्पादक

स्वामी विदेहात्मानन्द

वर्ष ४७
अंक ४

वार्षिक ६०/– **एक प्रति ८/–**

५ वर्षों के लिये – रु. २७५/–

आजीवन (२५ वर्षों के लिए) – रु. १,२००/–

(सदस्यता -शुल्क की राशि स्पीडपोस्ट मनिआर्डर से भेजें अथवा बैंक-ड्राफ्ट – 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाएँ

विदेशों में – वार्षिक २० डॉलर; आजीवन २५० डॉलर (हवाई डाक से) १२५ डॉलर (समुद्री डाक से)

संस्थाओं के लिये –

वार्षिक ९०/– ; ५ वर्षों के लिये – रु. ४००/–

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)

दूरभाष : ०९८२७१ ९७५३५

०७७१ – २२२५२६९, २२२४११९

(समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)

अनुक्रमणिका

मुद्रक : संयोग ऑफसेट प्रा. लि., बजरंगनगर, रायपुर (फोन : २५४६६०३)

लेखकों से निवेदन

पत्रिका के लिये रचना भेजते समय निम्न बातों पर ध्यान दें –

(१) धर्म, दर्शन, शिक्षा, संस्कृति तथा किसी भी जीवनोपयोगी विषयक रचना को 'विवेक-ज्योति' में स्थान दिया जाता है।

(२) रचना बहुत लम्बी न हो। पत्रिका के दो या अधिक-से-अधिक चार पृष्ठों में आ जाय। पाण्डुलिपि फूलस्केप रूल्ड कागज पर दोनों ओर यथेष्ट हाशिया छोड़कर सुन्दर हस्तलेख में लिखी या टाइप की हो। भेजने के पूर्व एक बार स्वयं अवश्य पढ़ लें।

(३) लेख में आये उद्धरणों के सन्दर्भ का पूरा विवरण दें।

(४) आपकी रचना डाक में खो भी सकती है, अत: उसकी एक प्रतिलिपि अपने पास अवश्य रखें। अस्वीकृति की अवस्था में वापसी के लिये अपना पता लिखा हुआ एक लिफाफा भी भेजें।

(५) 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशनार्थ कवितायें इतनी संख्या में आती हैं कि उनका प्राप्ति-संवाद देना सम्भव नहीं होता। स्वीकृत होने पर भी उसके प्रकाशन में ६-८ महीने तक लग सकते हैं।

(६) अनुवादित रचनाओं के मूल स्रोत का पूरा विवरण दिया जाय तथा उसकी एक प्रतिलिपि भी संलग्न की जाय।

(७) 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशित लेखों में व्यक्त मतों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होगी और स्वीकृत रचना में सम्पादक को यथोचित संशोधन करने का पूरा अधिकार होगा।

(८) 'विवेक-ज्योति' के लिये भेजी जा रही रचना यदि इसके पूर्व कहीं अन्यत्र प्रकाशित हो चुकी हो या प्रकाशनार्थ भेजी जा रही हो, तो उसका भी उल्लेख अवश्य करें। वैसे इसमें मौलिक तथा अप्रकाशित रचनाओं को ही प्राथमिकता दी जाती है।

सदस्यता के नियम

(१) 'विवेक-ज्योति' पत्रिका के सदस्य किसी भी माह से बनाये जाते हैं। सदस्यता-शुल्क की राशि यथासम्भव स्पीड-पोस्ट मनिआर्डर से भेजें या बैंक-ड्राफ्ट - 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवायें। यह राशि भेजते समय एक अलग पत्र में अपना पिनकोड सहित पूरा पता और टेलीफोन नम्बर आदि की पूरी जानकारी भी स्पष्ट रूप से लिख भेजें।

(२) पत्रिका को निरन्तर चालू रखने हेतु अपनी सदस्यता की अवधि पूरी होने के पूर्व ही नवीनीकरण करा लें।

(३) पत्रिका न मिलने की शिकायत माह पूरा होने पर ही करें। उसके बाद अंक उपलब्ध रहने पर ही पुन: प्रेषित किया जायेगा।

(४) अंक सुरक्षित पाने हेतु प्रति अंक ६/- रूपये अतिरिक्त खर्च कर इसे वी.पी. पोस्ट से मँगाया जा सकता है। यह राशि प्रति माह अंक लेते समय पोस्टमैन को देनी होगी, अत: इसे हमें मत भेजें।

(५) सदस्यता, एजेंसी, विज्ञापन या अन्य विषयों की जानकारी के लिये 'व्यवस्थापक, विवेक-ज्योति कार्यालय' को लिखें।

वर्ष ४७ | अप्रैल २००९ | अंक ४

विवेक-चूडामणि

– श्री शंकराचार्य

मोक्षस्य हेतुः प्रथमो निगद्यते
वैराग्यमत्यन्तमनित्यवस्तुषु ।
ततः शमश्चापि दमस्तितिक्षा
न्यासः प्रसक्ताखिलकर्मणां भृशम् ।।६९।।

अन्वय – अनित्य-वस्तुषु अत्यन्तं वैराग्यं मोक्षस्य प्रथमः हेतुः निगद्यते । ततः शमः च अपि दमः तितिक्षा प्रसक्त-अखिल-कर्मणां भृशम् न्यासः (निगद्यते) ।

अर्थ – समस्त अनित्य विषयों के प्रति तीव्र वैराग्य को मोक्ष-प्राप्ति का प्रथम कारण (उपाय) बताया गया है । उसके बाद शम, दम, तितिक्षा तथा श्रुति-विहित सकाम कर्मों के पूर्ण त्याग को (उसका उपाय बताया गया है) ।

ततः श्रुतिस्तन्मननं सतत्त्व-
ध्यानं चिरं नित्यनिरन्तरं मुनेः ।
ततोऽविकल्पं परमेत्य विद्वानि-
हैव निर्वाणसुखं समृच्छति ।।७०।।

अन्वय – ततः श्रुतिः, तत्-मननं, चिरं नित्य-निरन्तरं सतत्त्व-ध्यानं मुनेः ततः विद्वान् अविकल्पं परं (ब्रह्म) एत्य इह-एव निर्वाण-सुखं समृच्छति ।

अर्थ – इसके बाद मुनि (मननशील साधक) को गुरु से आत्मा के स्वरूप के विषय में वेदान्त के महावाक्य सुनना चाहिये, उसके बाद उसका मनन करना चाहिये और फिर दीर्घ काल तक नित्य निरन्तर उस आत्मा का ध्यान करना चाहिये । इसके बाद विद्वान् साधक निर्विकल्प परब्रह्म को प्राप्त करके इसी जीवन में निर्वाण का सुख अनुभव करता है ।

यद्बोद्धव्यं तवेदानीमात्मानात्मविवेचनम् ।
तदुच्यते मया सम्यक् श्रुत्वात्मन्यवधारय ।।७१।।

अन्वय – यत् आत्म-अनात्म-विवेचनम् तव बोद्धव्यं इदानीं तत् मया उच्यते, सम्यक् श्रुत्वा आत्मनि अवधारय ।

अर्थ – जिस आत्मा तथा अनात्मा के बीच भेद को तुम्हें विचारपूर्वक समझने की जरूरत है, अब मैं वही कहता हूँ । इसे ठीक से सुनकर अपने चित्त में दृढ़तापूर्वक धारण करो ।

मज्जास्थिमेदःपलरक्तचर्म-
त्वगाह्वयैर्धातुभिरेभिरन्वितम् ।
पादोरुवक्षोभुजपृष्ठमस्तकै-
रङ्गैरुपाङ्गैरुपयुक्तमेतत् ।।७२।।
अहंममेतिप्रथितं शरीरं
मोहास्पदं स्थूलमितीर्यते बुधैः ।

अन्वय – मज्जा-अस्थि-मेदः-पल-रक्त-चर्म-त्वक्-आह्वयैः एभिः धातुभिः अन्वितम्, पाद-उरु-वक्षो-भुज-पृष्ठ-मस्तकैः अङ्गैः उपाङ्गैः एतत् उपयुक्तम् । अहं-मम-इति मोहास्पदं प्रथितं एतत् शरीरं स्थूलं इति बुधैः ईर्यते ।

अर्थ – मज्जा, अस्थि, मेद, मांस, रक्त, चर्म व त्वचा नामक धातुओं द्वारा जुड़े पाँव, जंघे, सीना, हाथ, पीठ, सिर (इन सारे) अंगों तथा उपांगों के द्वारा निर्मित और 'मैं' तथा 'मेरा' के रूप में प्रसिद्ध मोह के इस आश्रय को विद्वान् लोग 'स्थूल शरीर' कहते हैं ।

❖ (क्रमशः) ❖

स्वामीजी को गुरुप्राप्ति

(युवावस्था में स्वामी विवेकानन्द के मन में ईश्वर के अस्तित्व के विषय में संशय उठा था। समाधान हेतु वे कई धर्माचार्यों के पास गये; अन्ततः श्रीरामकृष्ण के पास उन्हें सही समाधान मिलता है -)

(जोगिया–रूपक)

शान्ति पाने को विकल हूँ,
हैं नहीं मिलता कहीं पर ।
सत्य हो अनुभूत जिसको,
यदि मिले ऐसा कोई नर ।।

योगियों-संन्यासियों के,
पास पहुँचा और पूछा,
आपने क्या निज नयन से,
है कभी ईश्वर को देखा?
मूक हो जाते सभी आचार्य,
क्यों यह प्रश्न सुनकर !!

धर्म-ईश्वर सत्य हैं या,
मात्र मन की कल्पना हैं,
ध्येय क्या है जिन्दगी का,
और यह जग क्यों बना है?
ले सभी ये प्रश्न हृदि में,
चल पड़ा मैं दक्षिणेश्वर ।।

देव-मन्दिर कक्ष में,
देखा वहाँ आसीन बैठे,
दे रहे उपदेश भक्तों को,
बड़े तल्लीन-से वे ।
जा उन्हीं के बीच बैठा,
औ दिया निज प्रश्न को धर ।।

न रही विस्मय की सीमा,
जब मिला उत्तर उन्हीं से,
देखता हूँ ईश को भी,
तू यहाँ प्रत्यक्ष जैसे ।
कर दिया सर्वस्व अर्पण,
आज उनके पदकमल पर ।।

- विदेह

ज्ञान का मार्ग (१)

स्वामी विवेकानन्द

स्वामीजी की भारत सम्बन्धी उक्तियों का एक उत्कृष्ट संकलन कोलकाता के रामकृष्ण मिशन इंस्टीट्यूट ऑफ कल्चर ने My India, The India Eternal शीर्षक पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया है। प्रस्तुत है उन्हीं उक्तियों का हिन्दी रूपान्तरण। – सं.)

ज्ञान, भक्ति, योग और कर्म – ये चार मार्ग मुक्ति की ओर ले जाने वाले हैं। हर एक को उस मार्ग का अनुसरण करना चाहिये, जिसके लिये वह योग्य है, लेकिन इस युग में कर्मयोग पर विशेष बल देना होगा।[१६]

ज्ञानयोग – विचार का मार्ग

तुम्हें सदा स्मरण रखना होगा कि वेदान्त का मूल सिद्धान्त एकत्व या अखण्डता भाव है। द्वैत कहीं भी नहीं है; दो जगतों के लिये दो भिन्न प्रकार के जीवन नहीं हैं।... एक ही जीवन है, एक ही जगत् है और एक ही सत्ता है। सब कुछ वही एक सत्ता मात्र है; भेद केवल मात्रा का है, प्रकार का नहीं।... अमीबा और मैं एक ही हूँ, अन्तर केवल परिमाण का है; और सर्वोच्च जीवन की दृष्टि से देखने पर सारे भेद मिट जाते हैं।[१७]

कोई भी पूर्णता हासिल करने की जरूरत नहीं है। तुम पहले से ही मुक्त और पूर्ण हो। धर्म, ईश्वर या परलोक विषयक ये सब धारणाएँ कहाँ से आयीं? मनुष्य क्यों 'ईश्वर-ईश्वर' करता घूमता फिरता है? सभी देशों में, सभी समाजों में मनुष्य क्यों पूर्ण आदर्श का अन्वेषण करता फिरता है – चाहे वह आदर्श मनुष्य में हो, अथवा ईश्वर या किसी अन्य वस्तु के रूप में? इसलिये कि वह भाव तुम्हारे ही भीतर वर्तमान है। वह थी तुम्हारे हृदय की धड़कन और तुम उसे नहीं जानते थे; तुम सोचते थे कि बाहर की कोई वस्तु यह ध्वनि कर रही है। तुम्हारी आत्मा में विराजमान ईश्वर ही तुम्हें अपनी खोज करने को – अपनी उपलब्धि करने को प्रेरित कर रहा है। यहाँ, वहाँ, मन्दिर में, गिरजाघर में, स्वर्ग में, मर्त्य में, विभिन्न स्थानों में, अनेक उपायों से खोज करने के बाद, अन्त में हम एक चक्कर पूरा करके, हमने जहाँ से आरम्भ किया था, वहीं अर्थात् अपनी आत्मा में ही वापस आ जाते हैं और देखते हैं कि जिसको हम सारे जगत् में खोजते फिर रहे थे, जिसके लिये हमने मन्दिरों और गिरजों में जा-जाकर कातर होकर प्रार्थनाएँ कीं, आँसू बहाये, जिसको हम सुदूर आकाश में मेघ -राशि के पीछे छिपा हुआ अव्यक्त और रहस्यमय समझते रहे, वह हमारे निकट से भी निकट है, प्राणों का भी प्राण है, हमारा शरीर है, हमारी आत्मा है – तुम्ही 'मैं' हो, मैं ही 'तुम' हूँ। यही तुम्हारा स्वरूप है – इसी को अभिव्यक्त करो। तुम्हें पवित्र होना नहीं पड़ेगा – तुम स्वयं पवित्र ही तो हो। तुम्हें पूर्ण होना नहीं पड़ेगा – तुम पूर्ण ही तो हो। सारी प्रकृति देश-कालातीत सत्य को परदे के समान ढँके हुए है। तुम जो कुछ भी अच्छा विचार या अच्छा कार्य करते हो, उससे मानो वह आवरण धीरे-धीरे छिन्न होता रहता है और वह देश-कालातीत शुद्ध स्वरूप, अनन्त ईश्वर स्वयं अभिव्यक्त होता रहता है।[१८]

वेदान्त का समाधान यह है कि हम बद्ध नहीं, वरन् नित्य मुक्त हैं। यही नहीं, बल्कि अपने को बद्ध सोचना भी अनिष्टकार है, वह भ्रम है – आत्म-सम्मोहन है। ज्योंही तुमने कहा कि मैं बद्ध हूँ, दुर्बल हूँ, असहाय हूँ, त्योंही तुम्हारा दुर्भाग्य आरम्भ हो गया, तुमने अपने पैरों में एक बेड़ी और डाल ली। अत: ऐसी बात कभी न कहना और न कभी ऐसा सोचना ही।[१९]

वेदान्त कहता है कि दुर्बलता ही दुनिया के सारे दु:खों का कारण है, इसी से सारे दु:ख-कष्ट पैदा होते हैं। हम दुर्बल हैं, इसीलिये इतना दु:ख भोगते हैं। हम दुर्बलता के कारण ही चोरी-डकैती, झूठ-ठगी तथा इसी प्रकार के अनेकानेक दुष्कर्म करते हैं। दुर्बल होने के कारण ही हम मृत्यु के मुख में गिरते हैं। जहाँ हमें दुर्बल बनाने वाला कोई नहीं है, वहाँ न मृत्यु है न दु:ख। हम लोग केवल भ्रान्तिवश ही दु:ख भोगते हैं। इस भ्रान्ति को दूर कर दो और तत्काल सारे दु:ख चले जायेंगे।[२०]

मेरा उद्देश्य यह दिखलाना है कि नैतिकता और नि:स्वार्थता के सर्वोच्च आदर्श उच्चतम दार्शनिक धारणा के साथ असंगत नहीं हैं; नैतिकता और नीतिशास्त्र की उपलब्धि के लिये तुमको अपनी दार्शनिक धारणा को नीचा नहीं करना पड़ता, वरन् नैतिकता और नीतिशास्त्र को ठोस आधार देने के लिये तुमको उच्चतम दार्शनिक और वैज्ञानिक धारणाएँ स्वीकार करनी होंगी। मनुष्य का ज्ञान मानवीय हित का विरोधी नहीं है, बल्कि जीवन के प्रत्येक विभाग में ज्ञान हमारी रक्षा करता है। ज्ञान ही उपासना है। हम जितना जान सकें, उसी में हमारा मंगल है। वेदान्ती कहते हैं, इन समस्त प्रतीयमान बुराई का कारण है – असीम का सीमाबद्ध हो जाना। जो प्रेम सीमाबद्ध होकर क्षुद्र-भावापन्न हो जाता है तथा बुरा प्रतीत

होता है, वही अपनी चरमावस्था में स्वयं को ईश्वर के रूप में व्यक्त करता है। वेदान्त यह भी कहता है कि इस प्रतीयमान सम्पूर्ण बुराई का कारण हमारे भीतर ही है। किसी अलौकिक विधाता को दोष न दो, न निराश या दुखी होओ, न यह सोचो कि तुम गर्त में पड़े हो और जब तक कोई अन्य आकर तुम्हारी सहायता नहीं करता, तब तक तुम इससे निकल नहीं सकते। वेदान्त कहता है कि ऐसा नहीं हो सकता। ... बाहर से कोई सहायता नहीं मिलती, सहायता मिलती है भीतर से। तुम दुनिया के सारे देवताओं के समक्ष रो सकते हो, मैं भी अनेक वर्ष ऐसे ही रोता रहा, अन्त में देखा कि मुझे सहायता मिल रही है, किन्तु यह सहायता भीतर से मिली। भ्रान्तिवश इतने दिनों तक मैं जो अनेक प्रकार के काम करता रहा, वह भ्रान्ति मुझे दूर करनी पड़ी। यही एकमात्र उपाय है। मैंने स्वयं को जिस जाल में फँसा रखा है, वह मुझे ही काटना पड़ेगा और उसे काटने की शक्ति भी मुझमें ही है। इस विषय में निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ कि मेरे जीवन की भली या बुरी कोई भी प्रवृति व्यर्थ नहीं गयी – मैं उसी अतीत के भले-बुरे – दोनों प्रकार के कर्मों का समष्टि-स्वरूप हूँ। मैंने जीवन में बहुत-सी भूलें की हैं, किन्तु इनको किये बिना आज जो मैं हूँ, वह कभी न होता। मैं अब अपने जीवन से परम सन्तुष्ट हूँ। पर मेरे कहने का अर्थ यह नहीं कि तुम घर जाकर चाहे जितना, अन्याय करते रहो। मेरी बात का गलत अर्थ न समझ लेना। मेरे कहने का अभिप्राय यही है कि कुछ भूल-चुक हो गयी है, इसलिये एकदम हाथ-पर-हाथ रखकर मत बैठे रहो, अपितु यह समझ लो कि अन्त में फल सबका अच्छा ही होता है। इसके विपरीत और कुछ कभी नहीं हो सकता, क्योंकि शिवत्व और विशुद्धत्व हमारा स्वाभाविक धर्म है। उसका किसी भी प्रकार नाश नहीं हो सकता। हम लोगों का यथार्थ स्वरूप सदा ही एकरूप रहता है।[२१]

'पाप' की ही बात लो। मैं अभी वेदान्त के अनुसार 'पाप की धारणा' और यह धारणा कि 'मनुष्य पापी है' पर चर्चा कर रहा था। वस्तुत: दोनों एक ही हैं – एक सकारात्मक है और दूसरी नकारात्मक। पहली, मनुष्य को उसकी दुर्बलता दिखा देती है और दूसरी, उसकी शक्ति। वेदान्त कहता है कि यदि दुर्बलता है, तो कोई चिन्ता नहीं, हमें विकास करना है। जब मनुष्य पहले-पहल जन्म लिया, उसने तभी जान लिया गया कि उसका रोग क्या है। सभी अपना-अपना रोग जानते हैं – किसी दूसरे को बतलाने की जरूरत नहीं होती। यह सोचते रहने से कि 'हम रोगी हैं', हम स्वस्थ नहीं हो सकते। इसके लिये दवा आवश्यक है। बाहर की सारी चीजें हम भूला सकते हैं, बाह्य जगत् के प्रति हम कपटाचारी हो सकते हैं, पर हम सभी अपने मन के अन्तराल में अपनी दुर्बलताओं को जानते हैं। वेदान्त कहता है कि मनुष्य को सदैव उसकी दुर्बलता की याद कराते रहना अधिक सहायता नहीं करता। उसको बल प्रदान करो और सदैव निर्बलता का चिन्तन करते रहने से बल नहीं प्राप्त होता। दुर्बलता का उपचार सदैव उसका चिन्तन करते रहना नहीं है, वरन् बल का चिन्तन करना है। मनुष्य में जो शक्ति पहले से ही विद्यमान है, उसे उसकी याद दिला दो। मनुष्य को पापी न बतलाकर वेदान्त ठीक उसका विपरीत मार्ग ग्रहण करता है और कहता है 'तुम पूर्ण और शुद्धस्वरूप हो और जिसे तुम पाप कहते हो, वह तुममें नहीं है'। जिसे तुम 'पाप' कहते हो, वह तुम्हारी आत्म-अभिव्यक्ति का निम्नतम रूप है, अपनी आत्मा को उच्चतर भाव में व्यक्त करो। यह एक बात हम सबको सदैव याद रखनी चाहिये; और इसे हम सभी कर सकते हैं। कभी 'नहीं' मत कहना, यह न कहा कि 'मैं नहीं कर सकता', क्योंकि तुम अनन्तस्वरूप हो। तुम्हारे स्वरूप की तुलना में देश-काल भी कुछ नहीं हैं। तुम सब कुछ कर सकते हो, तुम सर्वशक्तिमान हो।[२२]

दो शक्तियाँ सदा समानान्तर रेखाओं में एक-दूसरे के साथ कार्य कर रही हैं। एक कहती है 'मैं' और दूसरी कहती है 'मैं नहीं'। उनकी अभिव्यक्ति केवल मनुष्य में ही नहीं, अपितु पशुओं में और क्षुद्रतम कीटों में भी दीख पड़ती है। नर-रक्त पिपासु लपलपाती जीभवाली बाघिन भी अपने बच्चे की रक्षा हेतु जान देने को तैयार रहती है। सबसे बुरा आदमी भी, जो सहज ही अपने भाई का गला काट सकता है – भूख से मरती हुई अपनी स्त्री तथा बच्चों के लिये निस्संकोच अपने प्राण दे देता है। सृष्टि के भीतर ये दोनों शक्तियाँ एक साथ काम कर रही हैं – जहाँ एक शक्ति देखोगे, वहीं दूसरी भी दीख पड़ेगी। एक स्वार्थपरता है और दूसरी नि:स्वार्थता। एक है ग्रहण, दूसरी त्याग। एक लेती है, दूसरी देती है। क्षुद्रतम प्राणी से लेकर उच्चतम प्राणी तक सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड इन्हीं दोनों शक्तियाँ का लीलाक्षेत्र है। इसके लिये किसी प्रमाण की जरूरत नहीं – यह स्वत:सिद्ध है।[२३क]

❖ (क्रमशः) ❖

सन्दर्भ-सूची –

१६. विवेकानन्द साहित्य, (सं. १९८९) खण्ड १०, पृ. २१८; **१७**. वही, खण्ड ८, पृ. ८-९; **१८**. वही, खण्ड २, पृ. १४; **१९**. वही, खण्ड १०, पृ. ३६७; **२०**. वही, खण्ड २, पृ. १८६; **२१**. वही, खण्ड ८, पृ. ६०-६१; **२२**. वही, खण्ड ८, पृ. ११; **२३क**. वही, खण्ड ८, पृ. ५९-६०

अवतार-रहस्य (२/२)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(१९९१ ई. के अप्रैल-मई में रामकृष्ण आश्रम, राजकोट के तत्त्वावधान में पण्डितजी के जो प्रवचन हुए थे, 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशनार्थ टेप से इन्हें लिपिबद्ध करने का श्रमसाध्य कार्य किया है श्रीराम संगीत महाविद्यालय, रायपुर के सेवानिवृत्त प्राध्यापक श्री राजेन्द्र तिवारी ने।

स्वर्णमृग बड़ा चंचल था। बड़ी मधुर बात है, किशोरीजी ने जब मारीच को देखा, तो प्रभु से बोलीं – यह मृग तो बड़ा सुन्दर है; आप इसको पकड़कर ले आइये, तो मैं पाल लूँगी और यदि पकड़ में न आये, तो बाण चलाकर मार दीजिये और तब इसका जो चर्म बनेगा, उस पर आप बैठियेगा। गीतावली रामायण में गोस्वामीजी ने ये दो विकल्प लिखे –

पाये पालिबे जोग मंजु मृग
मारेहु मंजुल छाला ।। ३/३

बड़ी गहरी बात है। कहती हैं – यदि पकड़ में आ गया, तो मेरे काम में आ जायेगा और यदि पकड़ में न आया, तो आपके काम में आयेगा। संकेत यह था – भक्तिदेवी कहती हैं कि बड़ा चंचल है और देखने में बड़ा सुन्दर है; ला दीजिये तो इसे मैं पाल लूँ। भक्ति में चंचल मन को पाला जाता है। यदि वह चंचल मन चंचलता न छोड़े, तो फिर दिव्य ज्ञान का बाण चलाइये और उसका देहभाव नष्ट कर दीजिये, तब जब वह रक्त-रहित मृग-चर्म होगा, मन विरक्त अर्थात् विरागी हो जायेगा, तो आपके अर्थात् ज्ञान के योग्य हो जायेगा। राग रक्त को कहते हैं। जैसा कि किसी महात्मा को कहते हैं कि बड़े विरक्त हैं। विरक्त का अर्थ यह है कि जिसमें रक्त न हो। तो क्या महात्माओं के शरीर में रक्त नहीं होता? शरीर का रक्त अलग है और मन का रक्त अलग है। जैसे रक्त न रहने पर शरीर स्थिर हो जाता है, वैसे ही जब तक मन में संसार के राग का रक्त है, तभी तक वह चंचल है। फिर जब यह राग का रक्त सूख जाय, विरक्त हो जाय, तो मन की चंचलता दूर हो जाती है। प्रभु बड़े कौतुकी हैं। उन्होंने मृग पर सीधे बाण नहीं चलाया। बोले – अच्छा, आप कहती हैं, तो मैं पकड़ने की चेष्टा करता हूँ। पर वह तो भागता रहा। अन्त में प्रभु ने बाण चलाया और उसका चर्म भी बना।

प्रभु ने हनुमानजी को लंका क्यों भेजा? सीताजी ने पालने के लिये सोने का मृग माँगा था और हनुमानजी भी मृग ही तो हैं। बन्दर के लिये भी 'शाखामृग' शब्द आया है –

साखामृग कै बड़ि मनुसाई ।। ५/३३/७

बन्दर और मृग – चंचल तो दोनों ही हैं। एक धरती पर चलनेवाला मृग है और बन्दर वृक्षों पर रहकर एक शाखा से दूसरी शाखा पर छलाँग लगाने वाला मृग है। हनुमानजी को क्यों भेजा? बोले – "प्रिये, तुम्हारे मन में इच्छा थी कि या तो मृग को पाल लें, या फिर उसे मारकर मृगचर्म बना लें। उस मृग को तो मैंने मार डाला और मृगचर्म भी बन गया, पर अब मैं आपके पास ऐसा मृग भेज रहा हूँ, जो पालने योग्य है। तुम पालने के लिये सोने का मृग चाहती थी, तो प्रिये, वह मृग लगता तो सोने का था, पर सोने की परीक्षा होती है न ! कई ऐसे भी धूर्त होते हैं, जो ऊपर असली सोने का पत्तर चढ़ा देते हैं और भीतर कुछ अन्य घटिया वस्तु भर देते हैं। इसलिये सराफ उसे छेदकर भी देखता है कि ऊपर तो शुद्ध सोना लग रहा है, पर भीतर कुछ दूसरा तो नहीं भरा है? चाणक्य ने कहा है – सोने की परीक्षा चार तरह से होती है, कसौटी पर कसकर, हथियार से छेदकर, अग्नि में तपाकर और हथौड़ी से पीटकर – **यथा चतुर्भिः कनकं परीक्ष्यते, निघर्षण-छेदन-ताप-ताड़नैः ।** रावण ने जो सोने का मृग दिखाया, उसे तुमने चाहा तो मैंने सोचा कि जरा इसे छेदकर देखें, असली सोना है या नकली। उसे जैसे ही मेरा बाण लगा, तो छेद होते ही उसका राक्षसत्व बाहर आ गया। अत: वह मृग तो मारने योग्य ही था और मैंने उसे मार दिया, पर तुम जिस मृग को पालना चाहती थी, उसे लंका भेज रहा हूँ।

इसका अर्थ यह है कि मन की चंचलता या तो मिटे, या फिर उसे भगवान से जोड़ दिया जाय। मन एक बच्चे के समान चंचल होता है। किसी बच्चे को चंचल देखकर क्या माँ को घृणा होती है? क्या माँ उसे घर से निकाल देती है? बच्चे की चंचलता देखकर माँ को बड़ा आनन्द आता है। वह उसके पीछे दौड़ती रहती है, उसे हृदय से लगाती रहती है। वैसे ही यदि अपने मन के चंचल होने का, बन्दर होने का भान है, तो उसका सदुपयोग यही है कि उस बन्दर को भगवान से जोड़ दिया जाय, भक्ति देवी से जोड़ दिया जाय।

हनुमानजी का चरित्र अद्भुत है। एक ओर तो वे ज्ञान के आचार्य हैं, दूसरी ओर भक्ति के आचार्य हैं, तीसरी ओर कर्म के आचार्य हैं और चौथी ओर दीनता के साक्षात् रूप हैं।

भगवान राम कहते हैं – हनुमान में और मुझमें तो कोई भेद नहीं है। हनुमानजी निरन्तर प्रभु के चरणों में बैठे हुये आँसू बहाते रहते हैं। ऋषि-मुनियों को लगा कि इतने दिन प्रभु के पास रहकर भी दीनता नहीं गई। प्रभु मुनियों का भाव

समझ गये। सहसा उन्होंने हनुमानजी से पूछा – तुम्हीं बता दो कि तुम कौन हो? हनुमानजी प्रभु का उद्देश्य समझ गये, बोले – प्रभो, मैं तो आपका सेवक हूँ। मेरा शरीर आपकी ही सेवा के लिये है। प्रभु ने कहा – नहीं, मैं देह की दृष्टि से नहीं कह रहा हूँ, तुम यह बताओ कि तुम कौन हो? बोले – बुद्धि की दृष्टि से तो मैं आपका अंश हूँ –

देह-दृष्ट्या तु दासोऽहम् बुद्धि-दृष्ट्या त्वदंशकः ।

प्रभु ने कहा – नहीं, बुद्धि की दृष्टि से नहीं, यह बताओ कि तुम तत्त्वत: कौन हो? हनुमानजी तत्काल बोले – वस्तुत: आप में और मुझ में तो रंचमात्र भी भेद नहीं है –

वस्तुतस्तु त्वमेवाऽहं इति मे निश्चिता मतिः ।।

हनुमानजी का यह जो अभेद-ज्ञान है, यह महानतम ज्ञान है। वर्णन आता है कि जब वे लंका जलाकर आये, तो प्रभु प्रशंसा करने लगे। सुनकर हनुमानजी उनके चरणों में गिर पड़े और जब प्रभु उन्हें उठाने लगे, तो उठ नहीं रहे हैं –

बार बार प्रभु चहइ उठावा । ५/३३/१

प्रभु जितनी बार उठाते हैं, वे कोई-न-कोई तर्क कर देते हैं। प्रभु बोले – "हनुमान, मैं तो समझता था कि तुम महान् तत्त्वज्ञानी हो; मैं तुम्हें उठा रहा हूँ अपने पास बैठाने के लिये, तो तुम उठ ही नहीं रहे हो !" हनुमानजी ने बड़ा सुन्दर उत्तर दिया – "प्रभो, आप तो सर्व रूप में पूर्ण हैं; और मेरी दृष्टि में यदि चरण और हृदय में भेद होता, तो मैं चरण छोड़ कर हृदय से लग जाता। अत: मैं चरण छोड़कर हृदय से क्यों लगूँ?" प्रभु मुस्कुराकर बोले – तुम्हारा तत्त्वज्ञान तो पूर्ण है।

हनुमानजी का तात्पर्य यह था कि मैं ज्ञानी हूँ, अभिमानी नहीं। भले ही आप और हम एक हैं, परन्तु यदि हमको सेवा में ही आनन्द आ रहा है, तो ऐसी स्थिति में हम आपका चरण छोड़कर हृदय से लगें, तो इसका अर्थ यह होगा कि हृदय ऊँचा है और चरण नीचा है। आप में न कोई नीचा है और न कोई ऊँचा – पूर्ण का तो सब कुछ पूर्ण ही है।

हनुमानजी महान् तत्त्वज्ञ हैं और वे शिव के अवतार हैं। शिव के रूप में तो श्रीराम और वे – दोनों तत्त्वत: एकाकार ही हैं – **शिवस्य हृदयं विष्णुः विष्णोः हृदयं शिवः**। ज्ञान की दृष्टि से देखें, तो हनुमानजी स्वयं साक्षात् ज्ञान-स्वरूप हैं। परन्तु वह ऐसा ज्ञान नहीं है, जो व्यक्ति को सेवा से विमुख बना देता है। इस प्रकार हनुमानजी ज्ञान के महानतम आचार्य हैं और यदि भक्ति की दृष्टि से देखें, तो शिव के रूप में हनुमानजी विश्वास के साक्षात् स्वरूप हैं –

भवानी-शंकरौ वन्दे श्रद्धा-विश्वास-रूपिणौ । (१/२)
बिनु बिश्वस भगति नहिं तेहि बिनु द्रवहिं न रामु ।
राम कृपा बिनु सपनेहुँ जीव न लह बिश्रामु ।। ७/९०

यदि भक्ति-मार्ग पर चलना है, तो आप उनका विश्वास के रूप में वरण करें और यदि कर्मयोग का आनन्द लेना है, तो उनका पवनपुत्र के रूप में स्मरण कीजिये। पवनपुत्र का अर्थ है – जिसके द्वारा चौबीसों घण्टे अनवरत सेवा हो रही है। किस-किस रूप में? जिस नि:श्वास-प्रश्वास के द्वारा हमारा प्राण सुरक्षित है, वह वायु है, पवन है। यदि वायु न चले, निस्पन्द हो जाय, तो व्यक्ति तो मृत हो जायेगा। जिसके द्वारा चौबीसों घण्टे निरन्तर सेवा-कर्म हो रहा है, पर आज तक किसी ने नहीं देखा कि वायु का आकार कैसा है। इसी प्रकार कर्मयोग का जैसा आदर्श हनुमानजी में है – अनवरत सेवा, पर एक क्षण के लिये भी अपने आपको सामने लाने की चेष्टा नहीं है। श्रीभरत तथा लक्ष्मणजी में भी सेवा-भावना अद्‌भुत है, पर इन दोनों की एक समस्या है – लक्ष्मणजी प्रभु की सेवा तो कर सकते हैं, मगर प्रभु दूसरे की सेवा के लिये कह दें, तो नहीं करेंगे। वन जाते समय प्रभु ने कहा था – गुरुदेव और माता-पिता की सेवा करो –

भवन भरतु रिपुसूदनु नाहीं ।
राउ बृद्ध मम दुख मन माहीं ।।
रहहु करहु सब कर परितोषू ।
नतरु तात होइहि बड़ दोषू ।। २/७१/२, ५

लक्ष्मणजी ने सीधा उत्तर दे दिया – किसकी सेवा करने को कह रहे हैं – गुरु की ! पिता-माता की ! एक ही वाक्य में उत्तर दे दिया – मैं जानता ही नहीं कि कौन गुरु हैं और कौन पिता-माता ! ये काम किसी और को सौंप दीजिये –

गुरु पितु मातु न जानहुं काहू ।

उनका संकेत भरतजी की ओर था – वे यह काम भली-भाँति सँभाल लेंगे; चिन्ता मत कीजिये, मुझे तो अपने साथ ही ले चलिये। प्रभु ने पूछा – मैंने इतनी मीठी बात कही, पर तुमने माना नहीं ! लक्ष्मणजी बोले – प्रभो, किसी वस्तु को उठा लेना बड़ी सेवा है, पर क्या कभी पाँच वर्ष के बच्चे से किसी ने कहा है कि तुम जितना बड़ा बोझ सिर पर लाद लोगे, उतने ही बुद्धिमान सिद्ध होगे। मैं शिशु हूँ, क्या एक हंस मदराचल पर्वत को सिर पर उठा सकता है –

मैं सिसु प्रभु सनेह प्रतिपाला ।
मंदरु मेरु कि लेहिं मराला ।। २/७१/४

लक्ष्मणजी की सेवा भी सेवा का एक रूप है। वे प्रभु की सेवा कर रहे हैं, जिनके द्वारा विश्व सुरक्षित है, तो लक्ष्मणजी द्वारा विश्व की सेवा भी हो रही है। पर वे प्रभु की सेवा करके ही सेवा कर सकते हैं, अन्यत्र नहीं, अत: वे सतत भगवान के संयोग में ही रहते हैं। दूर जाना उन्हें स्वीकार नहीं है।

दूसरी ओर भरतजी इतने संकोची हैं कि पास में रहें, तो सेवा नहीं हो पाती। वे स्वयं संकोची हैं और प्रभु भी उनसे संकोच करते हैं। भरतजी चरण दबाने चलें और प्रभु संकोच से कहें कि भरत, तुम न दबाओ। तो वे प्रभु की आज्ञा टाल नहीं सकते। जो शरीर की सेवा करना चाहता है, यदि वह

संकोची हो, तो सेवा नहीं कर सकता। इसलिये भरतजी प्रभु के विचार की सेवा कर सकते हैं, प्रभु के आदर्श का निर्वाह कर सकते हैं। उन्होंने सारी प्रजा को अपने प्रभु के रूप में देखकर सबकी सेवा की। एक संयोगी भक्त की सेवा है और दूसरा वियोगी भक्त की। एक संयोग में सेवा नहीं कर पाता और दूसरा वियोग में। इसकी पूर्णता तो हनुमानजी में ही है – संयोग में भी सेवा, वियोग में भी। प्रभु के पास भी रहकर और प्रभु दूर भेज दें तो भी, प्रभु ने जितनी बार दूर भेजना था, इन्हीं को भेजा। लक्ष्मणजी कभी दूर जाने के लिये प्रस्तुत नहीं हैं, परन्तु हनुमानजी कौन हैं – वे प्रभु के बाण हैं –

जिमि अमोघ रघुपति के बाना ।।

बाण को तो सदा दूर भेजा ही जाता है। हनुमानजी बाण के रूप में जहाँ देखिये, वहीं कार्यरत हैं। कैसी विलक्षण सेवा है ! सुग्रीव को राज्य दिला दिया। उनको प्रभु का मित्र बना दिया और स्वयं बन गये सेवक। इसे न्याय की दृष्टि से देखिये, तो कैसा अन्याय लगता है। इतने बड़े विरागी को सेवक का पद मिला और इतने बड़े विषयी को मित्र का। हम होते, तो रूठ जाते। प्रभु हनुमानजी से मिले और लक्ष्मणजी के सामने ही कह दिया – तुम तो लक्ष्मण से दूने प्यारे हो –

सुनु कपि जियँ मानसि जनि ऊना ।
तैं मम प्रिय लछिमन ते दूना ।।

आपका कोई पुराना सगा हो और उसके समक्ष नये व्यक्ति को कह दीजिये – अरे, इनसे तो मैं दूना प्यार करता हूँ। उसके क्रोध की सीमा नहीं रहेगी। हनुमानजी से तो अभी परिचय हुआ, पर लक्ष्मणजी इतने घनिष्ठ थे। पत्नी, राज्य – सब छोड़कर कब से सेवा कर रहे हैं और हनुमानजी से तुरन्त कहने लगे कि तुम तो इससे दूने प्यारे हो। प्रभु बोलने में इतने व्यवहार-कुशल हैं, पर ऐसा कोई सभ्य आदमी बोलता है क्या? आप किसी के घर भोजन करने गये और दूसरे का नाम लेकर कहने लगें कि उसके घर का भोजन बहुत अच्छा था। सोचिये, सामने वाले को कैसा लगेगा। आप उसका भोजन कर रहे हैं और नाम ले रहे हैं दूसरे का। एक का संगीत सुन रहे हैं और कह रहे हैं कि उनका संगीत बहुत अच्छा था। कई लोग ऐसी बुद्धिमत्ता करते हुए दिखाई देते हैं। उनको पता ही नहीं होता है कि व्यवहार की एक मर्यादा है, इसीलिये शास्त्रों में लिखा है कि जिस तीर्थ में जायँ, उसमें दूसरे तीर्थ की महिमा नहीं गाना चाहिये। गंगाजी में स्नान कीजिये तो गंगा की महिमा के श्लोक पढ़िये और यमुनाजी में स्नान कीजिये, तो यमुना की महिमा गाइये।

एक बार मैं बड़े संकोच में पड़ गया। मुझे चित्रकूट बहुत प्रिय है। चित्रकूट गये बिना मैं रह ही नहीं सकता। मेरे लिये वहाँ जाना बाध्यता है। श्री अवध उसकी तुलना में कम जाना होता है। वहाँ गया हुआ था। कनक-भवन-विहारी का दर्शन किया। उस दिन प्रभु ने बड़े व्यंग्य का दृश्य उपस्थित कर दिया। बाहर निकला तो दुकानदार एक टेप बजा रहा था। उसने मुझे नहीं पहचाना और संयोग से मेरे ही किसी प्रवचन का टेप था। उसमें पहला वाक्य था – यद्यपि अयोध्या की महिमा बहुत है, पर चित्रकूट जैसा मुझे वह प्रिय नहीं है। मैंने तो अपना सिर पकड़ लिया !

श्रीराम वाक्य-रचना में बड़े कुशल हैं। लेकिन वे हनुमानजी से ऐसा कह देते हैं। बराबर भी कहते, तो ठीक था। कहने लगे – तुम लक्ष्मण से दूने प्यारे हो। कहने के बाद प्रभु ने दोनों की ओर देखा, यह जानने के लिये कि दोनों ने किस अर्थ में लिया। अर्थ लेना भक्ति है। जो अर्थ नहीं ले सकता, वह भक्त नहीं हो सकता। वाक्य यही था कि तुम दोनों प्रिय हो। हनुमानजी को सोचना था कि मैं इनसे कितना बड़ा हूँ और लक्ष्मणजी को क्रुद्ध होकर यह कहते हुए लौट जाना था – लीजिये, अपने इस दूने को सँभालिये, मैं तो चला।

लेकिन प्रभु ने दोनों से अलग-अलग पूछा। पहले हनुमानजी से पूछा – "तुमने मेरा शब्द सुना? पर वह सुनकर यह तो नहीं लगता है तुमको अपने आपमें कोई विशेषता लगी। मैंने तुम्हें दूना बता दिया।" हनुमानजी चरणों को पकड़कर बोले – प्रभो, क्या मैं इतना अविवेकी हूँ? आप मेरी प्रशंसा थोड़ी कर रहे हैं। – इससे कोई बड़ी प्रशंसा हो सकती है क्या? – प्रभो, शिष्टाचार यह है कि एक व्यक्ति से दो व्यक्ति मिल रहे हैं और एक पुराना परिचित हो और एक नया हो तो मिलने के बाद दूसरे का परिचय देता है – ये हमारे मित्र हैं। तो आप मेरी प्रशंसा नहीं कर रहे थे। आप तो लक्ष्मणजी का परिचय दे रहे थे। – क्या परिचय दे रहा था? – "प्रभो, कोई किसी की प्रशंसा करना चाहे, तो कह देते हैं कि तुम तो प्राण से बढ़कर प्यारे हो। तो आप चाहते तो कह सकते थे कि हनुमान, तुम तो प्राण से भी प्यारे हो। परन्तु जब आपने कहा कि तुम लक्ष्मण से दूने प्यारे हो, तो मैं समझ गया कि आप बताना चाहते हैं कि लक्ष्मण तो मेरा प्राण है। मैं धन्य हो गया। आप यदि शरीर हैं और वे प्राण हैं। ये तो मेरे लिये आप से भी अधिक वन्दनीय हैं।" और कभी एकान्त में प्रभु ने लक्ष्मण से पूछा – "तुम्हें कैसा लगा? बुरा तो नहीं लगा। मैंने तुमसे दूना बता दिया।" लक्ष्मणजी हँसने लगे, कहा – प्रभु, वैसे तो मैं आपकी प्रशंसा को बहुत महत्त्व नहीं देता, क्योंकि आप अच्छे पारखी नहीं हैं।

लक्ष्मणजी का सदा से निर्णय था कि प्रभु में चाहे जितने गुण हों, पर वे अच्छे पारखी नहीं हैं। भरतजी जब आ रहे थे और लक्ष्मणजी निन्दा करने लगे, तो प्रभु ने सोचा कि रोकें। लक्ष्मणजी बोले – मुझे पता है कि आप क्या कहेंगे। – क्या कहूँगा? – आप यही तो कहेंगे कि भरत बहुत अच्छे हैं। प्रभु चुप रह गये। सचमुच कहनेवाले तो यही थे।

जब गोस्वामीजी प्रभु के पास पहुँचे, तो उन्होंने पूछा – कैसे आये? बोले – मैंने जब लक्ष्मणजी से सुना कि आप पारखी अच्छे नहीं हैं, तो चला आया। जिसको खरा सिक्का चलाना हो, वह तो कहीं भी चला जायेगा, पर जिसको खोटा सिक्का चलाना है, वह तो किसी ऐसे दुकानदार के पास जाता है, जिसको जरा कम दिखाई देता हो और जो सीधे सिक्का रख लेता हो। इसलिये चला आया कि आपको कुछ परख नहीं है, तो यह खोटा सिक्का बिना परखे सीधे रख लेंगे।

हनुमानजी के प्रसंग में लक्ष्मणजी बोले – आप हर किसी की प्रशंसा कर दिया करते हैं, परन्तु पहली बार आपने ठीक तौल कर प्रशंसा की है। आपने दूना कहकर उनकी प्रशंसा स्वभाव से नहीं की। वे सचमुच हर तरह से मुझसे दूने थे। महाराज, आदि से लेकर अन्त तक जितना कार्य हुआ, उससे सिद्ध हो गया कि वे हर तरह से मुझसे दूने हैं। लक्ष्मणजी गिनाने लगे – मारीच पर बाण चलाने के बाद मैंने जब माँ के सामने आपकी महिमा बतायी, तो माँ को मुझ पर अविश्वास हो गया। इतने वर्ष सेवा में रहकर भी मैं माँ का विश्वास नहीं जीत सका। पर धन्य हैं हनुमानजी – कोई परिचय नहीं और वे लंका में गये और माँ का विश्वास उन्हें मिल गया, तो वे दूने हैं या मैं श्रेष्ठ हूँ। वे तो निश्चित रूप से मुझसे दूने हैं। साथ ही उन्होंने यह भी कहा – किशोरीजी खोयीं मेरे अपराध से और मिलीं हनुमानजी के प्रताप से, इसलिये भी वे दूने हैं।

इसका श्रीगणेश तो वहीं से हो गया, जब हनुमानजी ने कहा कि आप दोनों मेरे पीठ पर बैठ जाइये। प्रभु ने मुस्कुरा कर लक्ष्मणजी से कहा – बहुत अच्छा सेवक मिल गया है, जो हम दोनों का भार उठाने में सक्षम है। लक्ष्मणजी शेष के अवतार हैं। संसार को उठाते हैं। पर जो शेषावतार लक्ष्मण और श्रीराम – दोनों को उठा ले, उससे बढ़कर कौन होगा? लक्ष्मणजी हँसकर बोले – प्रभु ने दूना कहा और उन्होंने अभी तौलकर दिखा भी दिया। देखिये, हम दोनों को उठा लिया। भक्त और भगवान दोनों का भार उठा लेना – यही हनुमानजी की विशेषता है। यही उनकी सेवा का विलक्षण तत्त्व है।

प्रभु प्रसन्न हो गये; हनुमानजी से कहा – धन्य हो तुम ! इतना बड़ा भार कौन उठा सकता है, मेरा और लक्ष्मण का भी ! हनुमानजी बोले – प्रभो, मैं बता दूँ कि यह सही नहीं है। मैंने तो जानबूझकर आप लोगों को कन्धे पर बैठा लिया, क्योंकि आगे पर्वत पर चढ़ना है। मैदानी भाग में व्यक्ति गिरे, तो चोट कम आती है, पर पहाड़ की चढ़ाई में गिर जाये, तो बहुत चोट आती है। हमें पहाड़ पर चढ़ना है। मैंने आप दोनों को इसलिये बैठा लिया कि नियम है कि पर्वत पर चढ़ते समय व्यक्ति सावधान रहता है कि कहीं गिर न जाय, परन्तु यदि चढ़ने वाले के कन्धे पर कोई बैठा हुआ हो, उसको सबसे अधिक चिन्ता यही रहती है कि ये गिरेगा, तो सबसे ज्यादा चोट तो हमीं को आयेगी। इसीलिये मैंने चिन्ता का भार आप दोनों पर सौंप दिया कि हनुमान गिरेगा, तो चोट आपको ही आयेगी। हनुमान यदि गिरा तो लोग यही कहेंगे – अरे, भगवान और लक्ष्मणजी – दोनों ने जिसको आश्रय दिया, उस हनुमान का पतन हो गया। मैं तो चिन्ता के भार से मुक्त हो गया। यही हनुमानजी की विलक्षणता है।

राज्याभिषेक हुआ। प्रभु वाटिका में बैठे। हनुमानजी से पूछा गया – आप कौन-सी सेवा लेंगे। कभी चरण दबाने लगते हैं, पर आज चरण दबाना स्वीकार नहीं किया। कभी प्रभु उनकी गोदी में सिर रख करके लेट जाते हैं, आज वो भी नहीं किया। भरतजी ने पीताम्बर बिछाया। लक्ष्मणजी और शत्रुघ्नजी – प्रभु के दोनों चरण दबाने लगे। तब हनुमानजी ने पंखा उठा लिया और पंखा झलने लगे –

मारुतसुत तब मारुत करई ।। ७/४९/७

कितने चतुर हैं ! चरण क्यों नहीं दबाये? गोद में क्यों नहीं लिया? बोले – चरण दबायेंगे तो प्रभु की सेवा होगी, गोद में लेंगे तो प्रभु की सेवा होगी, पर पंखा करेंगे, तो प्रभु की तो सेवा होगी ही, साथ ही प्रभु की जो सेवा कर रहे हैं, उनकी भी सेवा होगी। हनुमानजी की यह विलक्षण सेवा है, अद्‌भुत सेवा है। उनकी सेवा में अभिमान का लेश भी नहीं।

आप कर्मयोगी हैं, तो हनुमानजी को पवनपुत्र मान लीजिये; भक्तियोगी हैं, तो उन्हें शिव या उनके अंश के रूप में देख लीजिये; ज्ञानी हैं, तो आप उन्हें ईश्वर से अभिन्न के रूप में देख लीजिये; और यदि आप शरणागति चाहते हैं, दीनता का अनुभव करते हैं, तो वे ही तो विभीषण से कहते हैं – अरे, मैं तो बन्दर हूँ, पशु हूँ, अधम हूँ, पर आप तो पुलस्त्य कुल के हैं, उनके नाती हैं। आप धन्य हैं। यदि मुझ पशु पर प्रभु की कृपा हो गयी, जब उन्होंने इस बन्दर को स्वीकार कर लिया, तो आपको कैसे स्वीकार नहीं करेंगे –

अस मैं अधम सखा सुनु मोहू पर रघुबीर ।।

हनुमानजी की इस यात्रा में चारों योगों की परिपूर्णता है, जो समुद्र के किनारे से प्रारम्भ हुई और जगज्जननी सीता के पास पहुँचकर पूरी हुई। इसमें आपको चारों योग मिलेंगे। हनुमानजी कभी बहुत बड़े हो जाते हैं, यह ज्ञानयोग है। वे कभी छोटे हो जाते हैं, यह भक्तियोग है। वे कहीं अत्यन्त छोटे हो जाते हैं। उसमें भी भेद है – कहीं लघु और कहीं अत्यन्त लघु। यह शरणागति या दीनता का योग है। और कभी वे भारी तो होते हैं, परन्तु हल्के हो जाते हैं। जब लंका जलाने लगे तो भारी हैं, पर हल्के हैं। यह कर्म का रहस्य है। हनुमानजी के व्यक्तित्व में इन चारों योगों का ऐसा परिपूर्ण परिचय है कि हम चाहे जिस मार्ग के भी अनुयायी हों, उनसे प्रेरणा प्राप्त कर सकते हैं।

❖ (समाप्त) ❖

भागवत की कथाएँ (२०)

स्वामी अमलानन्द

(श्रीमद् भागवतम् पुराणों में सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। उसकी कथाओं ने युग-युग से मनुष्य को धर्म के प्रति आस्था-विश्वास दिया है जिससे भारतवासियों ने दृढ़ आत्म-विश्वास प्राप्त किया है। उन्हीं कथाओं में से लेखक ने कुछ का चयन करके सरल भाषा तथा संक्षेप में पुनर्लेखन किया है। 'विवेक-ज्योति' के लिये इस ग्रन्थ का सुललित अनुवाद किया है छपरा के डॉ. केदारनाथ लाभ, डी. लिट्. ने। – सं.)

अवधूत के चौबीस गुरु

भगवान श्रीकृष्ण उद्धव से कहते हैं – हमारे पूर्वज राजा यदु परम धार्मिक व्यक्ति थे। उन्होंने एक अवधूत से जो शिक्षा प्राप्त की थी, वही मैं तुमसे कहता हूँ।

एक तरुण अवधूत मन के मौज में सर्वत्र घूमते-फिरते रहते थे। उन्हें देखकर राजा यदु ने उनसे पूछा – "यद्यपि आपके पास कोई आजीविका का साधन भी नहीं है, तथापि आप बड़े आनन्द-मग्न दिख रहे हैं। आप कामना-वासना से चंचल नहीं हैं। इस आनन्द का कारण क्या है? यह ज्ञान आपको कहाँ से प्राप्त हुआ?"

उत्तर में अवधूत ने कहा – "राजन् ! आप ठीक कहते हैं। मैं बड़े आनन्द में हूँ। मैंने बहुत-सी शिक्षाएँ पायी हैं। मेरे गुरु कोई एक नहीं, चौबीस हैं। इन लोगों से मैंने जो-जो सीखा है, उसे मैं एक-एक कर कहता हूँ।"

१. मेरा प्रथम गुरु है यह पृथ्वी : इस धरती पर हम लोग कितने अत्याचार करते हैं, परन्तु धरती हर हाल में अविचल रहती है। उससे मैंने अपने पवित्र निश्चय पर दृढ़ रहना सीखा है। पृथ्वी के पर्वत और पेड़-पौधों से भी बहुत-कुछ सीखने योग्य है। पहाड़ को काटकर लोग मकान तथा सड़क बनाने के लिए पत्थर एकत्र करते हैं। पेड़ मनुष्य को फल-फूल देते हैं, छाया देते हैं – कितना उपकार करते हैं। उन्हें भी आदमी अपनी जरूरतों के लिए काट डालता है। परन्तु इससे पहाड़ों या वृक्षों को कोई उज्र-आपत्ति नहीं है। उनसे मैंने सीखा कि दूसरों के उपकार के लिए ही हम लोगों का जीवन-धारण है।

२. वायु : वायु स्वयं लिप्त हुए बिना ही गन्ध को वहन करती है। उससे मैंने सीखा है कि संसार में रहते हुए भी उससे अनासक्त रहना होगा।

३. आकाश : आकाश घर के भीतर रहता है और बाहर भी रहता है। एक ओर वह सीमित (ससीम) और दूसरी ओर अनन्त (असीम) है। आत्मा सीमित देह में रहते हुए भी असीम और अनन्त है।

४. जल : जल गन्दी वस्तुओं को शुद्ध करता है और स्वयं निर्मल तथा स्निग्ध रहता है। जल से मैंने सीखा है कि स्वयं पवित्र तथा शान्त रहते हुए संसार की मलिनता को दूर करना होगा।

५. अग्नि : हम लोग जाने या न जाने, लकड़ी में अग्नि है। परन्तु वह देखने में नहीं आती। जब लकड़ी जल उठती है, तभी देखने में आती है। वह सारी मलिनता को जला डालती है, परन्तु स्वयं मलिन नहीं होती। अग्नि की उत्पत्ति या विनाश नहीं होता; हम लोग आग की लौ की ही उत्पत्ति या विनाश देखते हैं।

आग की भाँति ही भगवान गुप्त रूप से सर्वत्र विद्यमान हैं, तपस्या के द्वारा उन्हें जाना जा सकता है।

६. चन्द्रमा : चन्द्रमा की कलाओं में ह्रास-वृद्धि होती रहती है, चन्द्रमा में नहीं। हम लोगों में जन्म से मृत्यु तक जो सारे परिवर्तन होते हैं, वे शरीर के होते हैं; आत्मा के नहीं।

७. सूर्य : सूर्य से मैंने सीखा है कि आत्मा एक और अभिन्न है। सामान्य बुद्धि से हमें लगता है कि सभी प्राणियों की आत्मा अलग-अलग है। परन्तु एक ही सूर्य अनेक जल-पात्रों में भिन्न-भिन्न सूर्य प्रतीत होता है। फिर यह भी देखने में आता है कि सूर्य पृथ्वी का जल खींचकर पृथ्वी के समस्त प्राणियों के कल्याण हेतु वर्षा के रूप में उसे लौटा देता है। मनुष्य के लिए यह जान लेना चाहिये कि इन्द्रियों द्वारा जो कुछ भी ग्रहण किया जाये, उसे फिर दूसरों के उपकार में लगा पाने में ही इस जीवन की सार्थकता है।

८. मेरे एक और गुरु हैं – कबूतर-कबूतरी : एक पेड़ पर एक कबूतर-कबूतरी का जोड़ा निवास करता था। वे अपने बच्चों के साथ बड़े सुखपूर्वक दिन गुजारते थे। एक दिन एक भयंकर बहेलिये ने कबूतर-कबूतरी की अनुपस्थिति में उनके सभी बच्चों को जाल में फँसा लिया। कबूतरी अपने बच्चों के लिए रोते-रोते जब जाल के पास आयी, तो वह भी बहेलिए के जाल में फँस गयी। अन्त में कबूतर ने आकर देखा कि उसके पुत्र-पुत्री तथा पत्नी – सभी उसे छोड़कर

चले गए हैं। ममता में आसक्त कबूतर भी स्वेच्छापूर्वक बहेलिये के जाल में प्रवेश कर गया।

हम लोग इसी जन्म में ही मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं। परन्तु उसके लिये प्रयास न करके, जो व्यक्ति आसक्ति के वशीभूत होकर कबूतर-कबूतरी की भाँति स्वयं को मायाजाल में फँसा डालता है, वह अत्यन्त अभागा है।

९. अजगर : अजगर भी मेरा एक और गुरु है। अजगर जो पाता है, वही खाता है; कुछ न मिले, तो धैर्य पूर्वक प्रतीक्षा करता है। बुद्धिमान व्यक्ति सुख-भोग के लिए लालायित नहीं होता। विवेकी व्यक्ति बिना माँगे, अनायास ही जो कुछ मिल जाये, उसी को खाकर रहेगा। भोजन सरस हैं या रूखा-सूखा, अधिक है या कम – वह इस बात पर ध्यान नहीं देता।

१०. समुद्र : समुद्र गहरा और असीम होता है। वह वर्षा के जल से फूलता-फैलता नहीं या फिर गरमी के मौसम में सूख नहीं जाता। भगवान के भक्त को भी उसी प्रकार सुख में प्रफुल्लित या दु:ख में उद्विग्न नहीं होना चाहिये।

११. पतंगा : जैसे अग्नि की चमक से मुग्ध होकर पतंगा उसमें जलकर मर जाता है, उसी प्रकार मूर्ख व्यक्ति रूप के मोह में मुग्ध होकर नष्ट हो जाता है।

१२. मधुमक्खी : मधुमक्खी द्वारा एकत्र किये गये मधु का दूसरे लोग ही उपभोग करते हैं। उससे मैंने सीखा कि यती को कभी संचय नहीं करना चाहिये।

१३. हथिनी : हथिनी के मोह में हाथी घास आदि से ढँके हुए गड्ढे में गिर जाता है और शिकारी उसे पकड़ लेता है। अतएव संन्यासी को काठ तक से भी बनी हुई स्त्री-मूर्ति का स्पर्श नहीं करना चाहिए। स्पर्श करने पर उसके संसार-बन्धन में आबद्ध हो जाने की आशंका है।

१४. भ्रमर : जिस प्रकार भ्रमर सभी फूलों से मधु का संचय करता है, उसी प्रकार बुद्धिमान व्यक्ति को छोटे-बड़े सभी शास्त्रों से सार का संग्रह कर लेना चाहिए।

१५. हिरन : व्याध के वाद्य-संगीत से आकर्षित होकर हिरन व्याध के जाल में फँस जाता है। रमणियों के नाच-गान से मुग्ध होकर ऋष्यश्रृंग मुनि स्त्रियों के वशीभूत हो गये थे। साधक को कभी भी नाच-गान में आकृष्ट नहीं होना चाहिए।

१६. मछली : मैंने मछली से यह सीखा है कि जिह्वा पर विजय न प्राप्त कर पाने पर विनाश निश्चित है। जैसे मछली भोजन के लोभ से मुग्ध होकर वंसी (कटिया) में बिंधकर अपने मृत्यु को आमंत्रित करती है, वैसे ही बुद्धिहीन मनुष्य जिह्वा के रसास्वादन के लिए लोभ से मोहित होकर मृत्यु के मुख में समा जाता है। विवेकी व्यक्ति भोग्य-पदार्थ का त्यागकर लगभग सभी इन्द्रियों पर विजय पा सकता है, परन्तु उसकी जिह्वा की लालसा आसानी से नहीं मिटती। मनुष्य जब तक जिह्वा की लोलुपता पर विजय नहीं पा लेता, तब तक वह सच्चा जितेन्द्रिय नहीं हो सकता। केवल जिह्वा को जीत लेने से सभी इन्द्रियों को जीता जा सकता है।[१]

१७. पिंगला : पिंगला नामक एक गणिका थी। उससे मैंने सीखा है कि आशा ही दु:ख का कारण है तथा निराशा (आशा का त्याग) ही सबसे बड़ा सुख है।[२]

१८. कुरर पक्षी : जब कुरर (चील, कौआ आदि) पक्षी अपने मुँह में मछली लेकर जाता है, तो दूसरे पक्षी उसे छीनने के लिये उसका पीछा करने लगते हैं। मछली को फेंक देने पर ही उसे छुटकारा मिलता है। इसीलिये कुरर पक्षी से मैंने सीखा है कि नि:सम्बल अवस्था ही अच्छी है। प्रिय वस्तु के प्रति आसक्ति ही मनुष्य के दु:ख का कारण है। जो इसे जानकर आसक्ति का त्याग कर पाते हैं, वे अनन्त सुख के अधिकारी होते हैं।

१९. बालक : बालक को किसी प्रकार के मान-अपमान का बोध नहीं रहता। उसका किसी ओर ध्यान नहीं रहता। वह आत्मक्रीड़ – अपने खेल में आत्म-विभोर रहता है। बालक से मैंने अपने आप में ही सन्तुष्ट रहना सीखा है।

२०. कुमारी : एक कुमारी कन्या के हाथों में अनेक चूड़ियाँ थीं। कोई काम करते समय उसकी चूड़ियों के आपस में टकराने से खनखनाहट की आवाज हुआ करती थी। वह बिना आवाज किये घर का कोई काम नहीं कर पाती थी। इसलिए उसने दोनों हाथों में केवल एक-एक चूड़ी रखकर अन्य सभी चूड़ियों को तोड़ डाला। उससे मैंने सीखा कि साधन-भजन करने के लिए एकान्त में निवास करना होगा। अधिक लोगों के रहने से ही आपस में टकराहट होती है।

२१. बाण बनानेवाला : बाण बनानेवाला कारीगर एकाग्र चित्त से बाण का निर्माण कर रहा था; राजा दलबल के साथ खूब शोरगुल करते हुए उसके पास से होकर चला गया, परन्तु वह कुछ भी नहीं जान सका। उससे मैंने यह सीखा कि चंचल मन को आसन-प्राणायाम आदि के द्वारा एकाग्र करना होगा।

२२. साँप : साँप का कोई निश्चित निवास-स्थान नहीं होता। वह दूसरे के बिल में निवास करता है। अकेला विचरण करता है। साँप से मैंने सीखा कि गृहविहीन होकर रहने में ही सुख है। घर-परिवार ही दु:ख का कारण है।

२३. मकड़ी : मकड़ी अपने मुँह के द्वारा अपने शरीर

१. तावज्जितेन्द्रियो न स्याद् विजितान्येन्द्रिय: पुमान्।
न जयेद् रसनं यावज्जितं सर्वं जिते रसे॥ ११/८/२१

२. आशा हि परमं दु:खं नैराश्यं परमं सुखम्।
यथा संच्छिद्य कान्ताशां सुखं सुष्वाप पिंगला॥ ११/८/४४

से महीन धागा निकालती है और उससे जाल तैयार करती है, और बाद में उसे अपने शरीर में ही समेट लेती है, इसी भाँति ईश्वर भी इस संसार की सृष्टि करते हैं, इसके द्वारा लीला करते हैं और फिर स्वयं उसका संहार कर डालते हैं। मकड़ी से मैंने यही शिक्षा पायी है।

२४. भृंगी कीट : कोई-कोई कीड़ा किसी अन्य कीट को पकड़कर अपने छत्ते में घुसा देता है। तब वह कीट भय से उस दूसरे कीड़े का आकार प्राप्त कर लेता है; जैसे भृंगी कीट। उससे मैंने सीखा कि तन्मय होकर ध्यान करने से भगवान का सारूप्य प्राप्त किया जा सकता है।

अपनी देह : इन सारे गुरुओं के अतिरिक्त मेरा एक और गुरु है, वह है मेरी अपनी देह। इसकी सहायता से ही मैं सारे तत्त्वों का निर्णय करके प्रसन्न मन से अकेला विचरण करता हूँ। यह शरीर परिवार का विस्तार करता है तथा उनके भरण-पोषण के लिए अनेक कष्ट सहता है। परन्तु अन्त में एक दिन उसे इन स्त्री, पुत्र आदि सबको छोड़कर चले जाना पड़ता है। मैंने समझा है कि यह देह अनित्य है, परन्तु फिर यह भी सत्य है कि हमें बड़े भाग्य से यह मानव-तन मिला है। बुद्धिमान व्यक्ति को निश्चय ही इस बात के लिये प्रयत्न करना चाहिए कि इस शरीर की अधोगति न हो तथा इसी से वह मुक्ति प्राप्त करके अपने जीवन को धन्य कर सके।

ब्रह्म के एक एवं अद्वितीय होने पर भी, विभिन्न ऋषियों ने उनका भिन्न-भिन्न प्रकार से वर्णन किया है। सबके पास से कुछ-न-कुछ सीखा जा सकता है।[३]

अवधूत के ज्ञानपूर्ण उपदेशों को सुनकर राजा यदु ने सभी आसक्तियों को त्याग कर भगवान में अपना मन लगाया।

भगवान के श्रीमुख से यह कथा सुनकर उद्धव आनन्द-विभोर हो उठे।

बन्धन और मुक्ति

उद्धव ने पूछा – "कृपा करके मुझे बद्ध और मुक्त जीव के विषय में बताइए। बद्ध और मुक्त जीव कैसा आचरण करते हैं, किन-किन लक्षणों से उन्हें जाना जा सकता है; वे कैसा भोजन करते हैं, कहाँ सोते हैं और एक ही आत्मा क्या कभी बद्ध और कभी मुक्त हो सकती है?"

श्रीभगवान बोले – "तीन गुणों के अधीन रहने के कारण हम लोग आत्मा को कभी बद्ध और कभी मुक्त कहते हैं। वस्तुत: आत्मा का न बन्धन होता है, न मुक्ति ही होती है। सपने में देखी गयी वस्तु जाग जाने पर फिर दिखाई नहीं पड़ती। इसी प्रकार शोक-मोह, सुख-दु:ख, जीवन-मृत्यु – सभी स्वप्न की भाँति हैं; वास्तविक रूप में इनकी कोई सत्यता नहीं है। अविद्या जीव के बन्धन और विद्या मोक्ष का कारण होती है। यह अविद्या और विद्या दोनों ही मेरी (भगवान की) शक्ति-स्वरूप हैं। जीव मेरे अंश से पैदा होते हैं। मेरी ही शक्ति-स्वरूप अविद्या के द्वारा जीव का बन्धन और विद्या के द्वारा जीव की मुक्ति होती है। बड़े आश्चर्य की बात है कि एक ही शरीर में शोक मोह से आबद्ध बद्ध-जीव और आनन्द गुणवाला मुक्त-ईश्वर – दोनों ही वास करते हैं।

जीव और ईश्वर सुन्दर पंखों से युक्त दो पक्षियों की भाँति हैं।[४] दोनों ही चित् स्वरूप हैं; आपस में मित्रभाव से रहते हैं और यथेच्छा एक ही देह-वृक्ष में घोसला बनाते हैं। इन दोनों में से एक कर्मफल का भोग करता है और दूसरा कुछ भी भोग नहीं करता – ज्ञान के कारण श्रेष्ठतर होकर स्थित रहता है। जो कर्मफल का भोक्ता है, वह परमात्मा को नहीं जानता। वह अविद्या से युक्त है। इसी कारण बद्ध है।[५]

जो कर्मफल-रूपी पीपल के फल को नहीं खाते, वह ईश्वर हैं, नित्यमुक्त हैं। मुक्त व्यक्ति देह में रहकर भी देह के परे होते हैं।

❖ (क्रमश:) ❖

३. श्रीरामकृष्ण भी कहा करते थे – जब तक जीऊँ तब तक सीखूँ।

४. सुपर्णावितौ सदृशौ सखायौ
यदृच्छयैतौ कृतनीडौ च वृक्षे।
एकस्तयो: खादति पिप्पलान्न-
मन्यो निरन्नोऽपि बलेन भूयान्॥ ११/११/६

५. पुरंजन की कथा में भी ऐसा ही भाव देखने को मिला था।

ज्यादा चालाकी ठीक नहीं

स्वयं को ज्यादा चतुर समझना उचित नहीं। कौआ खुद को कितना चालाक समझता है! वह कभी फन्दे में नहीं फँसता। भय की जरा भी आशंका होते ही उड़ जाता है। कितनी चतुराई के साथ वह खाने की चीजें उड़ा ले जाता है! इसके बावजूद वह विष्ठा खा-खाकर मरता है। ज्यादा चालाकी का यही परिणाम होता है।... मनुष्य जब तक बच्चों जैसा सरल नहीं हो जाता, तब तक उसे ज्ञान नहीं होता। सब दुनियादारी, विषयबुद्धि को भूलकर बालक जैसे नादान बन जाओ, तभी ज्ञान प्राप्त कर सकोगे। – *श्रीरामकृष्ण*

स्थितप्रज्ञ का स्वरूप

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्द जी ने आकाशवाणी के चिन्तन कार्यक्रम के लिए विविध विषयों पर अनेक विचारोत्तेजक लेख लिखे थे, जो उसके विभिन्न केन्द्रों द्वारा समय समय पर प्रसारित किये जाते रहे हैं तथा काफी लोकप्रिय हुए हैं। प्रस्तुत लेख आकाशवाणी, रायपुर से साभार गृहीत हुआ है। - सं.)

हमारे धर्मग्रन्थों में आत्मप्रबुद्ध तथा आत्मज्ञानी व्यक्ति को स्थितप्रज्ञ पुरुष के नाम से सम्बोधित किया गया है तथा वहाँ विस्तार से उसके लक्षणों की चर्चा की गई है। किन्तु अनेक व्यक्ति गीता तथा अन्य धर्मग्रन्थों में स्थितप्रज्ञ पुरुष की विशेषताओं को पढ़कर ऐसा समझते है कि स्थितप्रज्ञ पुरुष मानो पाषाण या जड़वत् वस्तु हो, जिसमें कोई चेतना न हो – वह सुख-दुःख, शीत-उष्ण में अविकारी रहता है। वे यह सोचते हैं कि क्या मनुष्य की ऐसी स्थिति सम्भव है? और यदि है भी तो क्या वह उपादेय है? फिर स्थितप्रज्ञ व्यक्ति और पागल में फर्क ही क्या रहा?

असल में हमारे धर्मग्रन्थों में स्थितप्रज्ञ पुरुष के जो गुण बताये गये हैं, उनकी प्राप्ति जीवन में सम्भव है। पर वह कोई जड़ अवस्था नहीं है। वहाँ पर चैतन्य अत्यन्त तीव्र रूप से स्पन्दित होता है। जो लक्षण गीता में स्थितप्रज्ञ के बताये गये हैं, वे उस पुरुष के मनोभाव के बाहरी प्रकाश हैं। इस स्थिति को पहुँचा हुआ व्यक्ति मानसिक सन्तुलन की अवस्था प्राप्त करता है। अनुकूल होने पर वह सुख से फूलता नहीं और प्रतिकूल होने पर वह उद्विग्न नहीं होता। तात्पर्य यह कि वह अनुकूलता-प्रतिकूलता और इसी प्रकार सारे द्वन्द्वों को प्रकृति का प्रवाह मानता है और वह स्वयं इस प्रवाह से अपने को परे समझता है – साक्षी के रूप से। इसीलिए वह निर्द्वन्द्व होता है। यह अवस्था सतत अभ्यास से प्राप्त हो सकती है – विवेक और वैराग्य के अभ्यास से लोगों ने इस स्थिति को प्राप्त किया है।

यह अवस्था उपादेय भी है, बल्कि यों कहें – यही अवस्था समस्त रचनात्मक शक्ति की ही नींव है। इसको समझाने के लिए एक उदाहरण दें। आप कोई मैच देख रहे हैं। आप दोनों दलों में से किसी की ओर नहीं हैं। आप निष्पक्ष दर्शक हैं। मैच देखने में आपको अधिक आनन्द मिलेगा या किसी एक विशिष्ट दल वाले व्यक्ति को? निश्चय ही आपको। किसी भी दल से सम्बन्धित व्यक्ति आपके समान आनन्द नहीं उठा सकता। वह तो अपने दल की हार-जीत से चिन्तित रहेगा। दूसरे दल के खिलाड़ी का सुन्दर खेल उसे कोई आनन्द नहीं दे सकेगा। पर आप निष्पक्ष हैं, निर्दलीय हैं, इसलिए दोनों ओर के खिलाड़ियों के खेल का आनन्द उठा सकते हैं। ठीक इसी प्रकार स्थितप्रज्ञ पुरुष सुख-दुःख, शीत-उष्ण आदि द्वन्द्वों में दोनों विपरीत अवस्थाओं का आनन्द उठाता है। इसका तात्पर्य यह है कि स्थितप्रज्ञ व्यक्ति सुख के समान दुःख में भी आनन्द का प्रकाश देखता है। यह सत्य है कि यह बड़ी ऊँची अवस्था है, किन्तु इसे एक असम्भाव्य अवस्था नहीं कहा जा सकता। हमारे आध्यात्मिक ग्रन्थ इसी अवस्था को जीवन के लक्ष्य के रूप में निर्देशित करते हैं।

पागल व्यक्ति के बाहरी क्रियाकलाप ऊपरी तौर पर देखने से स्थितप्रज्ञ के व्यवहारों के समान प्रतीत हो सकते हैं, पर पागल और स्थितप्रज्ञ की दशा में आकाश-पाताल का अन्तर होता है। कल्पना कीजिए – प्रकाश के अभाव में जो अन्धकार रहता है उसकी और साथ ही चौंधियाती रोशनी की। ऊपर-ऊपर से दोनों समान से लगते हैं, क्योंकि दोनों ही दशाओं में आँखें अपना काम नहीं कर पातीं। पर कितना अन्तर दोनों में है। यही बात पागल और स्थितप्रज्ञ की है। एक में अज्ञान का, विक्षिप्तता का अन्धकार विद्यमान है और दूसरे में ज्ञान का, सुबोधता का चौंधियाता प्रकाश संस्थित है। इसलिए श्री भगवान गीता में कहते हैं – "हे पार्थ! जब कोई व्यक्ति अपने मन के समस्त काम का परित्याग करता है और अपने आप में सन्तुष्ट होकर रहता है, तब उसको स्थितप्रज्ञ कहते हैं। दुःख में जिसके मन को खेद नहीं होता, सुख में जिसको आसक्ति नहीं होती, जिसके प्रीति, भय और क्रोध नष्ट हो गये हैं, उसी को स्थितप्रज्ञ मुनि कहा जाता है।" ❑❑❑

आत्माराम के संस्मरण (१०)

स्वामी जपानन्द

(रामकृष्ण संघ के एक वरिष्ठ संन्यासी स्वामी जपानन्द जी (१८९८-१९७२) श्रीमाँ सारदादेवी के शिष्य थे। स्वामी ब्रह्मानन्दजी से उन्हें संन्यास-दीक्षा मिली थी। उन्होंने बँगला में श्रीरामकृष्ण के कुछ शिष्यों तथा अपने अनुभवों के आधार पर कुछ रोचक संस्मरण लिपिबद्ध किये थे। अब तक हम उनके तीन ग्रन्थों – 'प्रभु परमेश्वर जब रक्षा करें', 'मानवता की झाँकी' एवं 'आत्माराम की आत्मकथा' का धारावाहिक प्रकाशन कर चुके हैं। १९६५-६६ के दौरान उन्होंने एक बार पुन: कुछ संस्मरणों को बँगला भाषा में लिखा था। उनमें से कुछ अप्रकाशित हैं। पूर्व-प्रकाशित घटनाएँ भी भिन्न विवरणों के साथ लिखी गयी हैं, अत: पुनरुक्त होने पर भी रोचक, शिक्षाप्रद तथा प्रेरणादायी हैं। – सं.)

बेल्लारी का विचित्र अनुभव

बेल्लारी में विचित्र अनुभव हुआ। वहाँ स्टेशन के पास धर्मशाले में कोई स्थान नहीं मिला। ईरानी लोगों से भरा हुआ दीख पड़ा। ब्रिटिश लोगों ने इन्हें अपराधी जनजातियों में शामिल कर रखा है। पुलिस उन पर विशेष नजर रखती है और एक स्थान पर अधिक दिन नहीं रहने देती। ये लोग यायावर (घुमक्कड़) जाति के दुर्दान्त लोग हैं और सभी कार्यों में उस्ताद हैं। मुर्गियाँ, गधे, घोड़े, बकरियाँ आदि अपने साथ ही रखते हैं। बेचने के लिये छुरी, छुरा, गुप्ती आदि भी रखते हैं। इनकी महिलाएँ बाँस की टोकरियाँ आदि बुनती हैं। पुरुष-स्त्री सब खूब मजबूत तथा लड़ाकू स्वभाव के हैं – बिल्कुल निर्भय, देखने में सुन्दर – रक्तिम आभा लिये गोरा रंग ! परिधान-पोशाक आदि आकर्षक हैं, विशेषकर महिलाओं के। सब कुछ में उनका अपना ढंग और अपना वैशिष्ट्य है। हजारों लोगों के बीच उन्हें पहचानने में देरी नहीं लगती। एक विशिष्ट रूप-रंग तथा पोशाक को उन लोगों ने पकड़े रखा है। यह अच्छा भी है, इसमें एकता का सूत्र निहित है।

बेल्लारी छावनी – कैंटोन्मेंट में एक धर्मशाला है और साधुओं के ठहरने की व्यवस्था भी है – यह सुनकर संन्यासी उसे खोजने चला। बाजार में देखा कि एक बोर्ड पर 'रामकृष्ण डिसपेंसरी' लिखा हुआ है। झाँककर देखा तो श्रीरामकृष्ण का चित्र भी था। सोच रहा था कि भीतर प्रवेश करूँ या नहीं; तभी डॉक्टर स्वयं बाहर निकले और संन्यासी को बुलाकर भीतर ले गये। पूछा – "क्या आपको कोई रोग-जनित कष्ट है?" संन्यासी ने सब बताया। सुनकर बोले – "उल्टा-सीधा खाने से यह रोग हुआ है। थोड़ा-सा भात खायेंगे, तो उसी से ठीक हो जायेगा।" अकिंचन संन्यासी सोच रहा था कि इस निर्देश का कैसे पालन किया जा सकेगा? डॉक्टर ने पूछा – "क्या आपका भोजन आदि हुआ है?" – "नहीं।" कहने पर मकान के बगल में ही एक होटल था, उसके व्यवस्थापक को बुलाकर संन्यासी को 'दध्योदनम्' – अर्थात् दही-भात देने को कह दिया। पैसे वे स्वयं देंगे।

भोजन के बाद संन्यासी पुन: डॉक्टर के पास गया। एक अन्य व्यक्ति वहाँ दवा लेने के लिये आकर डॉक्टर के साथ तेलगू भाषा में बातें कर रहे थे। संन्यासी के आते ही उसका प्रसंग उठाकर बोले – "इन्हें पथ्य की जरूरत है। बीमार होकर भ्रमण कर रहे हैं।" इसके बाद "किस अंचल के हैं और मुख्य आश्रम कहाँ है" – पूछने पर जब ज्ञात हुआ कि बंगाल के और बेलुड़ मठ के हैं, तो बोल पड़े – "आयँ, तो आप रामकृष्ण-विवेकानन्द संघ के हैं? कुछ काल मैं मद्रास के रामकृष्ण मिशन स्टूडेंट्स होम (छात्रावास) में था। मैं वहीं का भक्त हूँ – अनन्य अनुरागी भक्त हूँ, इसीलिये उनके नाम पर यह औषधालय बनाया है।"

संन्यासी – "वह तो मैं बोर्ड देखते ही समझ गया था और वह चित्र ! उसी को देखकर तो मैं खड़ा हो गया था।"

डॉक्टर – "मैं घर में अकेला हूँ, परिवार नहीं है। रहना चाहें, तो मेरे साथ ही ठहरने की व्यवस्था हो सकती है; भोजन भी इस होटल में हो सकता है।"

वे सज्जन आगे बोल उठे – "आप चिन्ता मत कीजियेगा, मेरे घर में अलग कमरा है और इनके पथ्य की व्यवस्था करने में भी मुझे कोई असुविधा नहीं होगी। चलिये स्वामीजी, मेरे साथ चलिये।"

डॉक्टर ने कहा – "ये भक्त और सज्जन व्यक्ति हैं। इनके साथ जाइये। परन्तु मेरा अनुरोध है कि जब इच्छा हो, यहाँ चले आइयेगा।"

उनका मकान छावनी के एक तरफ था। संन्यासी को ले जाकर उन्होंने मकान के बाहर की ओर के एक छोटे-से कमरे में रहने को दिया। कमरा अलग तो जरूर था, परन्तु रात के समय बाहर के दरवाजे में ताला लगा देने पर बाहर नहीं जाया जा सकता था, परन्तु छत पर जाया जा सकता था; और छत पर ही शौच जाने की व्यवस्था थी। शौचालय ईंट सजाकर बना हुआ है। दिन में मेहतर आकर ले जाता है।

अंग्रेजी भाषा में विविध प्रकार की धर्मचर्चा चल रही थी। रात के लगभग १० बजे होंगे। सहसा दरवाजे के पास से एक लम्बे मुखवाले बालक ने, जिसके मुख पर अमानुषी भाव था, भीतर झाँककर देखा। संन्यासी की नजर पड़ी, तो उसने पूछा – "वह कौन है?"

वे सज्जन थोड़े संकुचित होकर बोले – "वह मेरा पुत्र है स्वामीजी ! इसके बाद जितने बच्चे हुए, एक भी नहीं बचा;

और उनके मर जाने पर वह बड़ा खुश होता है। इसका कारण क्या है, यह आज तक कोई भी नहीं समझ सका है। किसी-किसी का मत है कि उसके शरीर में कोई दुष्ट प्रेतात्मा है और सम्भव है कि वह पूर्वकाल में हमारा शत्रु रहा हो। बड़े-बड़े मांत्रिकों से बहुत झाड़-फूँक करायी गयी, परन्तु कोई लाभ नहीं हुआ। सम्भव है कि आपके समान सत् साधु की कृपा से यदि ठीक हो जाय। वह सारे दिन घर के एक कोने में चुपचाप बैठा रहता है और रात में १० बजे के बाद पूरे घर में घूमता रहता है। सोता नहीं है। हम लोग कह देंगे – आपको कुछ नहीं करेगा। बात सुनता है। रात में छत पर जाता है, इसीलिये कई बार आवाज भी होती है, पर भय की कोई बात नहीं। उसकी माँ उसे समझाकर कह देगी कि वह ज्यादा आवाज न करे, इसी से वह मान जायेगा।'' संन्यासी को थोड़ा सोचना ही पड़ा कि ऐसी हालत में उनके घर रहना उचित होगा या नहीं ! उसने निश्चय किया कि दो-तीन दिन देखने के बाद कोई दूसरी व्यवस्था करने की चेष्टा करेगा।

बालक सारे दिन एक कमरे के अँधेरे कोने में सिमटकर पड़ा रहता था। उस कमरे में उसकी माँ के सिवा अन्य कोई नहीं जा पाता था। जाते ही वह जोर-जोर से नाचते हुए एक तरह की डरावनी आवाज निकालकर अपनी नापसन्दगी सूचित करता। रात के दस बजे के बाद वह कमरे से बाहर निकल कर मकान के अन्य भागों में तथा छत पर घूमता रहता। दरवाजे पर ताला लगा होने के कारण बाहर सड़क पर नहीं जा पाता।

संन्यासी जिस दिन गया था, उसी रात उसने झाँककर उसे देख लिया था। उसके बाद अपनी माँ के समझा देने से ज्यादा ताक-झाँक नहीं करता था। बीच-बीच में देखता। एक दिन भोर में शौच के लिये छत पर जाते समय देखा कि वह पीछे-पीछे दबे पाँव आया है और ''एइ जा'' कहते ही तेजी से नीचे उतर रहा है। आवाज सुनकर उसके पिता उठकर आये और तेलगू में उसे कुछ समझाया। उसके बाद से वह नहीं आया, मगर हर रात को उस समय छत पर जाते समय वह पीछा करता और ''जा'' कहते ही चला जाता।

उसमें एक दोष और था। खाना देते समय वह न जाने कैसे जानकर, कमरे के कोने से निकल आता, एक बार लोलुप दृष्टि से देख लेता। ऐसा प्रतिदिन करता, अपनी माँ के डाँटने पर भी यह कार्य वह अवश्य करता। उसके पिता बोले – ''घर में किसी को भी निमंत्रित नहीं किया जा सकता। खाना परोसते समय वह अवश्य जाता है; और बहुधा उंगली डुबाकर चख भी लेता है और नाराजगी भी जताता है। परन्तु आपके दही-भात का वह स्पर्श नहीं करता, केवल देखता भर है।

संन्यासी तो पहले से ही पेचिश रोग से पीड़ित था। उसकी व्याधि का उपशम तो नहीं हो रहा था, बल्कि उसमें थोड़ी वृद्धि ही हुई थी। कई बार शौच जाना पड़ता था।

उन सज्जन के घर शायद बीस या उससे कुछ अधिक दिन रहने के बाद सोच रहा था कि अब यहाँ से अन्यत्र जाना उचित है। सोच रहा था कि कहाँ जायें, तभी एक दिन वहाँ की छावनी (कैंटोन्मेंट) के गोदाम के बड़े बाबू बातचीत के दौरान स्वयं ही बोले – ''देख रहा हूँ कि अनेक दिनों से आप इनके घर में हैं। किसी असुविधा का अनुभव तो नहीं कर रहे हैं। उनका एक अजीब लड़का है। आप यदि हमारे घर पर आयें, तो हमें कोई असुविधा नहीं होगी। हम लोग भी कुछ दिन आपकी सेवा करेंगे। संन्यासी तत्काल राजी हुआ और गृहस्वामी की अनुमति लेकर उन सज्जन के घर चला गया। उनके घर में भी वह १५-१६ दिन रहा। उसके बाद पता चला कि वे दोनों हाथों से अंग्रेजों को लूट रहे हैं। फिर वहाँ और न ठहरकर बीजापुर होते हुए गदग चला गया। उस समय बेल्लारी में चार-पाँच हजार तुर्की युद्धबन्दी थे।

बीजापुर होकर गदग

संन्यासी ने पहली बार बीजापुर जाकर भी वहाँ का किला आदि नहीं देखा, क्योंकि वह पेचिश के रोग से पीड़ित था और शरीर दुर्बल था। पता चला कि गदग की गाड़ी दो-तीन घण्टे बाद चलेगी, अत: स्नान आदि और उसके बाद थोड़ा कुछ अल्पाहार करने के उद्देश्य से नीचे उतरा। स्टेशन के नल के पास जाकर पता चला कि वहाँ स्नान करना मना है। निकट ही रेलवे पुलिस का केबिन था। उसमें एक सब-इंस्पेक्टर तथा एक कांस्टेबल को बैठे देखकर संन्यासी बोला – ''स्नान करना चाहता हूँ। यदि आप लोग बाल्टी दें, तो पानी लेकर दूर जाकर स्नान कर लूँ।'' उन्होंने तत्काल बाल्टी तथा लोटा दिया और केबिन के पीछे ही स्नान कर लेने को कहा। स्नान हो जाने पर सब-इंस्पेक्टर ने पूछा – ''कुछ खाना भी होगा क्या?'' संन्यासी ने बताया कि उधर जो गरम-गरम पूड़ियाँ तल रहा है, वही खा लेगा। उन्होंने पुलिस-कांस्टेबल को एक पाव पूड़ियाँ गरम-गरम छनवाकर ले आने का आदेश दिया। परन्तु संन्यासी द्वारा पैसे देने को प्रस्तुत होने पर वे बोले – ''पैसे देने की जरूरत नहीं। ऐसे ही ले आयेगा।'' संन्यासी – ''उससे बलपूर्वक धर्म कराना है क्या? मेरे पास खाने के लिये पैसे हैं।'' इस पर वे अपने पास से देते हुए हँसते-हँसते बोले – ''बाद में दे देता।''

खाना हो जाने के बाद काफी धर्मचर्चा हुई। उन्हें पढ़ा हुआ देखकर संन्यासी बोला – ''आपके साथ बातें करके बड़ा आनन्द हुआ। इस लाइन के लोग प्राय: उधर के रस के रसिक नहीं होते।'' उसके बाद गाड़ी का समय हो जाने पर वे स्वयं बैठाने आये। टिकट के लिये पैसे निकालकर पुलिस-कांस्टेबल को देते देखकर बोले – ''गार्ड ईसाई है, परन्तु बड़ा भला आदमी है। उससे कह देता हूँ, टिकट की जरूरत नहीं

होगी।'' संन्यासी – ''महाशय, मैं इस प्रकार जाना उचित नहीं समझता। यदि कोई अफसर जाँच करे, तो गार्ड महाशय लज्जा में पड़ सकते हैं। क्योंकि कानूनी दृष्टि से तो मुफ्त यात्री ले जाने का अधिकार उनके पास नहीं है। वैसे बहुत-से लोग उस प्रकार जाते हैं और ये लोग ले भी जाते हैं।'' गार्ड – ''हाँ, परन्तु उस प्रकार चलता है, वैसी कोई समस्या नहीं आती।''

इसके बावजूद संन्यासी के टिकट कटाने की इच्छा व्यक्त करने पर साहब ने स्वयं पैसे देकर कांस्टेबल को भेजा। गार्ड के डिब्बे में ही संन्यासी को बैठाया, ताकि धर्मचर्चा करते हुए यात्रा हो सके। गाड़ी रवाना होते समय संन्यासी ने सब-इंस्पेक्टर को धन्यवाद देते हुए कहा – ''आपकी यह उदारता देखकर आनन्दित हुआ।'' वे हँसकर बोले – ''स्वामीजी, यह साधु-बाबाजी लोगों का ही पैसा है। जो लोग रामजी की गाड़ी कहकर बिना-टिकट घूमते-फिरते हैं, उन्हें कभी-कभी पकड़ता हूँ और पैसे छीन लेता हूँ। वैसे इसकी हकदार तो रेलवे कम्पनी है, परन्तु वह हम लोगों के पास ही रह जाता है। वैसे अच्छे साधु दिख जायँ, तो उन्हीं पैसों से उन्हें खिलाता हूँ या टिकट भी खरीद देता हूँ।''

गार्ड कन्नड़भाषी एंग्लो-इंडियन थे। अच्छे धार्मिक व्यक्ति थे। रास्ते में काफी धर्मचर्चा हुई। श्रीरामकृष्ण तथा स्वामी विवेकानन्द के उदार धर्ममत के प्रति उनके मन में बड़ी श्रद्धा उपजी, इसीलिये रात में एक जंक्सन पर ड्यूटी बदलने पर भी उन्होंने संन्यासी को नहीं छोड़ा, ब्रेक-जर्नी लिखाकर अपने घर ले गये। उनकी पत्नी भी दक्षिणी और बड़ी भद्र थीं। उन्होंने संन्यासी को बड़े यत्नपूर्वक रखा और जोर करके टोस्ट आदि खिलाया। अगले दिन मुहल्ले (रेलवे कॉलोनी) के सभी लोग उनके घर में संन्यासी को देख अवाक् रह गये। दो-एक लोगों ने साहस करके पूछ भी लिया – ''संन्यासी होकर भी आपने एक ईसाई का आतिथ्य क्यों स्वीकार किया है?''

''संन्यासी होने के कारण ही यह आतिथ्य स्वीकार किया गया है'' – कहने पर वे लोग आश्चर्यचकित सोचने लगे कि अन्य संन्यासी लोग तो पानी तक नहीं पीते। फिर जब सुना – ''संन्यासी तो मानव-मात्र का बन्धु तथा आत्मीय होता है और जात-पात-धर्म आदि मान्यताएँ इस आत्मीयता में बाधक नहीं होतीं'' – तो वे लोग बड़े प्रसन्न हुए। वे लोग सादर अपने घर में भी ले गये।

संन्यासी उस दिन शाम की गाड़ी से गदग के लिये रवाना हुआ। उन ईसाई दम्पति ने बड़े आग्रह के साथ कहा – ''फिर आइयेगा। इस मार्ग से गुजरने से उतर जाइयेगा। आप बड़े आत्मीय प्रतीत होते हैं – यह परमात्मा की दया है।''

गदग में एक धनी व्यवसायी के अम्बा-मन्दिर में जगह मिली। अष्टभुजा देवी का छोटा-सा मन्दिर और दो छोटे-छोटे कमरे थे। किसी अतिथि-अभ्यागत या साधु के आ जाने पर मालिक उन्हीं कमरों में रखते थे। भिक्षा की व्यवस्था उनके अपने घर में ही होती है। बेल्लारी से ही एक सज्जन को पत्र लिखकर संन्यासी के विषय में सूचना दे दी गयी थी। इसलिये रहने-खाने की कोई असुविधा नहीं हुई। प्रतिदिन उनके घर जाकर एक बार दही-भात खा आता।

प्रारम्भ में बड़ा विचित्र अनुभव हुआ। वहाँ शौचालय नहीं थे। सभी लोग पास के ही एक मैदान में जाते। उसके चारों ओर सड़क तथा रिहायसी मकान थे और लोगों का आवागमन जारी रहता था। विशाल मैदान के बीच में लाइन खींचकर मेहतर लोगों के लिये झाड़ू, टोकरी आदि रखे हुए थे। मैदान के सामने का भाग एक छोटी-सी दीवार से घिरा देखकर संन्यासी ने पहले तो सोचा कि शौचालय होगा, मगर पास जाने से ज्ञात हुआ कि वह मल-संग्रह का स्थान था। और देखा कि उस मैदान में चूने से बनाये हुए चिह्न के एक ओर निर्विकार भाव से महिलाएँ बैठती हैं और दूसरी ओर पुरुष।

पेचिश के रोगी संन्यासी के लिये तो यह एक बड़ा संकट खड़ा हो गया। ओ माँ! यह कैसी व्यवस्था! अब उपाय क्या हो! देखा कि रास्ते के एक ओर स्कूल है। उसमें दो शौचालय हैं, जिनमें ताले लगे हुए हैं। भीतर जाकर माली से उसे खोलने को कहा। वह सहज भाव से बोला – ''बड़े मास्टर के आदेश के बिना मैं नहीं खोल सकूँगा। इतना बड़ा मैदान है, जाओ न!'' मास्टर स्कूल के पीछे ही रहते थे। संन्यासी ने कहा – ''जाकर उन्हें बताओ कि मैं एक परदेशी आदमी हूँ, उनसे मिलना चाहता हूँ।'' मास्टर आये। संन्यासी ने उनसे अपने रोग का उल्लेख करके कहा – ''आप कृपा करके यह शौचालय उपयोग करने दीजिये। शरीर अस्वस्थ होने के कारण मेरे लिये उस मैदान में जाना असम्भव है।'' मास्टर ने सज्जनता वश ताला खुलवा दिया।

शौच हो जाने बाद संन्यासी ने उन्हें बताया कि उसे वहाँ की इस विचित्र व्यवस्था और जिस प्रकार लोग बिना-शरम के बैठते जा रहे हैं – देखकर उसे आश्चर्य तथा दु:ख हुआ है और बोला – ''यह क्या सभ्य समाज का रूप है? यदि कोई विदेशी पत्रकार इसका फोटो ले जाय, तो बड़ी लज्जा की बात होगी।'' वे सहज भाव से बोले – ''यहाँ इसी प्रकार चलता है। परन्तु आपके आने पर माली ताला खोल देगा।''

मन्दिर के मालिक बड़े सज्जन थे, नित्य दर्शन करने आते थे और ५-१० मिनट धर्मचर्चा करने के बाद अपने कार्य पर चले जाते, या फिर संध्या के बाद घर लौटते।

एक दिन सुबह आकर वे बोले – ''रामकृष्ण मिशन के एक बड़े विद्वान् साधु आये हैं। वे यहाँ हफ्ते भर रहेंगे। गीता पर प्रवचन देंगे। संन्यासी चाहे तो सुबह-सुबह जाकर उनके साथ परिचय, वार्तालाप आदि कर सकता है।''

संन्यासी सोचने लगा – ''कौन हो सकते हैं?'' अस्तु।

थोड़ा शीघ्र ही उनके घर पहुँचकर देखा कि एक अच्छे सुदर्शन साधु दाढ़ी बना रहे हैं। मिशन के कर्मी के ही समान सूटकेश, बेडिंग आदि सब है। परिचय पाने के लिये संन्यासी ने पूछा – "किस केन्द्र में हैं?" उत्तर मिला – "मैसूर।" तब तक मैसूर में मिशन का कोई केन्द्र नहीं हुआ था। संन्यासी ने फिर पूछा – "संन्यास की दीक्षा आपको किनसे प्राप्त हुई है?" उत्तर – "स्वामी निर्मलानन्द।"

संन्यासी को ज्ञात था कि तुलसी महाराज (निर्मलानन्दजी) ने उस समय तक किसी को भी संन्यास-दीक्षा नहीं दी है।

संन्यासी – "यह व्यवसाय कब से शुरू किया है?" इस पर उन्हें विस्मयपूर्वक ताकते देखकर बोला – "मैसूर में कोई केन्द्र नहीं है और निर्मलानन्द जी का कोई संन्यासी-शिष्य भी नहीं है। मेरा उनसे निकट सम्पर्क है। इस तरह साधु के वेश में आपके लिये ऐसा करना अनुचित है। इससे साधु-समाज की हानि होती है। लोगों की श्रद्धा चली जाती है। मुझे इन सज्जन को बताना ही पड़ेगा कि आपका मिशन से कोई नाता नहीं है। जरूरत पड़ी, तो पुलिस को भी ...! (ये चन्दा एकत्र करने हेतु ही आये थे)। उनका तो मुख ही सूख गया। दाढ़ी बनाने का काम रुक गया। बोलती भी बन्द हो गयी।

संन्यासी ने घर की महिलाओं से शीघ्र दही-भात देने को कहा। इस पर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ, क्योंकि दोनों के एक साथ भोजन की बात थी। इधर अपराह्न के समय मन्दिर के मालिक का आगमन हुआ। संन्यासी तो उनकी गम्भीर मुखमुद्रा देखते ही समझ गया कि कुछ गड़बड़ है। सोचा – जो भी हो, इससे अधिक और क्या कहेंगे कि यहाँ से अन्यत्र चले जाओ।

उनके मन्दिर में जाकर प्रणाम आदि कर आने के बाद संन्यासी ने पूछा – "क्या बात है? स्वास्थ्य ठीक तो है!" उत्तर – "ठीक कैसे होगा! आपने उन विद्वान् साधु के साथ ऐसा व्यवहार किया कि वे चले गये। सज्जन थे, इसीलिये आपके विरुद्ध कुछ कहा नहीं। केवल "जरूरी काम है, याद नहीं रहा, बिना गये नहीं होगा" – आदि कहकर चले गये। इधर मैंने ढिंढोरा पिटवा दिया था कि कल से वे पूरे सप्ताह भर गीता-प्रवचन करेंगे। समझ में नहीं आता कि अब मैं क्या करूँ! और इन सबके मूल में आप हैं। (ये नगर-पालिका के अध्यक्ष थे।)

संन्यासी ने कहा – "हाँ, एक तरह से कहा जाय तो मेरे रहने के कारण उन्हें सुविधा नहीं हुई। लेकिन महाशय वे तो रामकृष्ण मिशन के साधु नहीं थे। और क्या वे मिशन के नाम पर चन्दा वसूलने नहीं आये थे?"

मन्दिर के मालिक – "आपको कैसे पता चला कि वे मिशन के साधु नहीं हैं?

संन्यासी – "पूछने से। वैसे मैंने उन्हें बताया कि मैं आपको वह बात कहने को बाध्य हूँ और सम्भव है कि पुलिस से भी कह दूँ ...।"

मन्दिर के मालिक – "आयँ, आप कहते क्या हैं?"

संन्यासी – "वे जिस आश्रम के लिये धन संग्रह करने आये थे, वहाँ कोई आश्रम ही नहीं है। फिर उन्होंने जिन गुरु के पास से संन्यास-दीक्षा लिया हुआ बताया, उनके कोई भी संन्यासी शिष्य ही नहीं हैं और ईश्वर की कृपा से वे मुझे भलीभाँति जानते हैं। इसी कारण बाध्य होकर वे विद्वान् साधु चले गये।"

मालिक – "तब तो वह ठग था। आपने हमें बचा लिया। घर के लोगों के मन में ऐसी धारणा हुई कि आपने ईर्ष्यावश उन्हें ऐसा कुछ कह दिया कि वे अपमानित महसूस करके चले गये। ठीक से भोजन आदि भी नहीं किया।"

संन्यासी – "उनका वैसा सोचना स्वाभाविक है। मुझे तो मात्र इतना ही कहना है कि मैं यहाँ स्थायी रूप से रहने आया नहीं और आपसे किसी तरह की आर्थिक सहायता भी नहीं माँगी, तो फिर उन लोगों के मन में ईर्ष्या की बात क्यों उठी!"

मालिक – "स्वामीजी, मिशन के साथ अपने घनिष्ठ परिचय की बात तो आपने कभी बतायी ही नहीं!"

संन्यासी – "मैं उन्हीं के संन्यासियों में से एक हूँ।"

मालिक – "क्या! तो फिर आपने स्वयं को छिपाकर रखा है! हमने तो सोचा कि कोई सड़क-छाप साधु होंगे। हमने कोई देखभाल भी नहीं की, क्षमा करेंगे। हमें एक ठग के चंगुल से बचाया, इसके लिये मैं आपके प्रति बड़ा अनुग्रहित बोध कर रहा हूँ। आपने परिचय क्यों नहीं दिया?"

संन्यासी – "अभी तो बताया, लेकिन मेरे भाग्य में तो वही दध्योदन – दही-भात ही लिखा है! परिचय बताकर थोड़ी सुविधा पा लेना, मैं पसन्द नहीं करता। एक फकीर साधु के रूप में प्राप्त होनेवाले सत्कार को ही मैं उचित मानता हूँ। वही अच्छा भी है।"

मालिक – "परन्तु मैंने जो ढिंढोरा पिटवा रखा है कि गीता-प्रवचन होगा और करेंगे रामकृष्ण मिशन के एक विद्वान् संन्यासी, उसका क्या होगा?"

संन्यासी – "आपकी बात रखने की चेष्टा करूँगा, परन्तु आप तो देख ही रहे हैं कि मैं कोई विद्वान् साधु नहीं हूँ।"

अगले दिन से पूरे सप्ताह भर संन्यासी को ही गीता-व्याख्या करनी पड़ी। घर की महिलाएँ बड़ी लज्जित थीं। उन्होंने कई तरह से क्षमा-याचना की। संन्यासी ने मन्दिर के मालिक सज्जन से कहा – "इस प्रकार कोई आश्रम का नाम लेकर चन्दा माँगने आये, तो रुपये सीधे बेलूड़ मठ के महासचिव या अध्यक्ष के पते पर भेजेंगे और साथ ही यह भी सूचित कर देंगे कि यह किस आश्रम के किस विभाग के लिये दान किया जा रहा है। अधिक रुपये हाथ में न देना ही उचित होगा।

❖ (क्रमशः) ❖
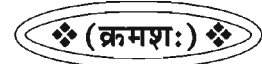
चरित्र ही विजयी होता है (३)

स्वामी सत्यरूपानन्द

(प्रतिवर्ष की भाँति २००५ में भी रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के सचिव स्वामी सत्यरूपानन्द जी महाराज ने 'सन्त गजानन अभियांत्रिकी महाविद्यालय, शेगाँव (महाराष्ट्र)' के अनुरोध पर विद्यार्थियों के लिये 'व्यक्तित्व-विकास एवं चरित्र-निर्माण' पर कार्यशाला का संचालन किया था। उनके इस महत्वपूर्ण व्याख्यान को उपरोक्त संस्थान ने 'Character Wins' नामक पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया। सबकी उपयोगिता की दृष्टि से उसे 'चरित्र ही विजयी होता है' इस शीर्षक से हम 'विवेक ज्योति' में प्रकाशित कर रहे हैं। इसका हिन्दी अनुवाद और सम्पादन रायपुर आश्रम के ही स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने किया है। – सं.)

निरन्तर सजगता एवं सावधानी ही बुरे विचारों को नष्ट करने और सद्विचारों को स्थापित करने का वह मूल्य है, जो हमें देना पड़ता है। हमें यह स्मरण रखना चाहिये कि चरित्र और आचरण का निर्माण कभी समाप्त नहीं होता। यह एक-एक ईंट से निर्मित भवन के समान निरन्तर चलनेवाली प्रक्रिया है, जो एक अजेय और शाश्वत दिव्य चरित्र-दुर्ग के निर्माण की प्रक्रिया है।

८. चरित्र-निर्माण की प्रक्रिया

चरित्र को विद्वानों ने विभिन्न प्रकार से परिभाषित किया है। अनेकों मनोवैज्ञानिकों और समाज-शास्त्रियों ने सामान्य रूप से चरित्र को दो भागों में विभाजित किया है। पहला – व्यक्तिगत चरित्र और दूसरा – सामाजिक या राष्ट्रीय चरित्र।

इस विषय में विद्वानों और मनीषियों में भी मतभेद है। कुछ मनीषी विद्वान कहते हैं कि यदि किसी का व्यक्तिगत चरित्र सम्यक् रूप से निर्मित हो जाय, तो उसका सामाजिक या राष्ट्रीय चरित्र स्वयं ही निर्मित हो जायेगा। कुछ विद्वानों का मत है कि समाजिक और राष्ट्रीय चरित्र के निर्माण पर ही अधिक बल देना चाहिये। इससे व्यक्तिगत चरित्र स्वत: ही निर्मित हो जायेगा।

९. व्यक्तिगत चरित्र ही आधार-शिला है

जब हम सभी देश-काल में महान राष्ट्रीय नेताओं, विशेषकर भारत के सच्चे राजनेताओं के चरित्र का अवलोकन करते हैं, तब पाते हैं कि वे बड़े सच्चे और पवित्र थे। उनका व्यक्तिगत चरित्र सुदृढ़ तथा सुगठित था। वे लोग सभी तरह के विरोधों, प्रलोभनों और कठिनाइयों के विरुद्ध पर्वत के ग्रेनाइट पत्थर के चट्टान की तरह अचल खड़े रहे। वे लोग ऐसा कैसे कर सके? वे लोग ऐसा केवल अपने अजेय सच्चरित्रता के कारण ही कर सके। लोकमान्य तिलक, महात्मा गाँधी, मदन मोहन मालवीय, सुभाषचन्द्र बोस, लाल बहादुर शास्त्री और हमारे देश के दूसरे अनेकों महापुरुष एक ही व्यक्तित्व में, व्यक्तिगत और राष्ट्रीय चरित्र के समन्वित ज्वलन्त दृष्टान्त हैं। उन लोगों ने समस्त कठिनाइयों पर विजय प्राप्त की और अन्त में अपने लक्ष्य की प्राप्ति की। निष्कर्ष रूप में उनका जीवन और आचरण निश्चित रूप से यह प्रदर्शित करता है कि व्यक्तिगत चरित्र ही वह आधारशिला है, जिस पर सुदृढ़ राष्ट्रीय चरित्र रूपी महल का निर्माण होता है। अब हमारे सामने प्रश्न उपस्थित होता है कि हम कैसे अपने व्यक्तिगत चरित्र का निर्माण करें? हमारे प्राचीन ऋषियों ने हमें बताया है कि व्यक्तिगत चरित्र के निर्माण हेतु व्यक्ति के जीवन में एक उच्च आदर्श का होना अत्यन्त आवश्यक है। अपने दिव्य स्वरूप को प्रकाशित और विकसित करने के लक्ष्य को व्यक्ति अपने जीवन का महानतम लक्ष्य के रूप में स्वीकार कर सकता है। दूसरे सभी उद्देश्य इससे गौण हैं तथा इस महानतम लक्ष्य के परिपूरक हैं। जिन्होंने अपने दिव्य स्वरूप को प्रकाशित एवं विकसित करने का महान लक्ष्य स्वीकार किया है, ये गौण उद्देश्य उनके चरित्र के विकास में सहायक हो सकते हैं। जब तक व्यक्ति इस उच्च लक्ष्य को अपने जीवन का परम एवं श्रेष्ठतम आदर्श नहीं बना लेता, तब तक अन्य कोई भी आदर्श, व्यक्ति के चरित्र को दृढ़ एवं अजेय नहीं बना सकते। कभी-कभी कोई व्यक्ति किसी गौण आदर्श के लिये जीवित रह सकता है या मर भी सकता है, लेकिन तब भी उसके वास्तविक चरित्र का निर्माण हो गया, ऐसा नहीं माना जा सकता, क्योंकि व्यक्ति में अन्तर्निहित दिव्यता की अभिव्यक्ति और उसका विकास करना ही वास्तविक चरित्र है। जब तक व्यक्ति कठोर परिश्रमपूर्वक अपने शरीर तथा मन में सब प्रकार की अनुकूल परिस्थितियों का निर्माण नहीं कर लेता, दूसरे शब्दों में अपने व्यक्तित्व में, अपने अन्दर दिव्य शक्ति की अभिव्यक्ति के लिये, उसके विकास के लिये कठोर श्रम के द्वारा अपने तन-मन को योग्य नहीं बना लेता, तब तक सच्चे चरित्र का निर्माण नहीं हो सकता।

१०. आत्म-विश्वास

यदि व्यक्ति एकबार अपने जीवन का परम आदर्श स्वीकार कर लेता है, तो उसे दृढ़ विश्वास होना चाहिये कि वह अपने जीवन में इस आदर्श को साकार करने के लिये सब कुछ करेगा। वह इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये कुछ भी नहीं छोड़ेगा। वह अपनी शक्ति और योग्यता पर कभी संशय नहीं करेगा, क्योंकि प्रत्येक मनुष्य सुषुप्त दिव्य शक्ति और योग्यता के साथ जन्म लेता है, जिसे अपनी इस दिव्य शक्ति को अभिव्यक्त एवं प्रकाशित करने के लिये तथा अपने व्यक्तित्व

को पूर्णता प्रदान करने के लिये उसे जगाना होगा।

इस विश्वास को निश्चित रूप से आत्मविश्वास के साथ संयुक्त होना चाहिये – "मैं अपने चरित्र का निर्माण और अपने लक्ष्य की प्राप्ति, बिना दूसरे किसी-की सहायता के भी प्राप्त करने में सक्षम बनूँगा।" यदि कहीं से, कोई सहयोग मिल जाता है, तो ठीक है, उसका स्वागत है, लेकिन यदि किसी को, कहीं से कोई सहायता न मिले, तो उसमें आत्मविश्वास होना चाहिये कि वह किसी भी परिस्थिति से अपने लक्ष्य से विचलित नहीं होगा और उन विषम परिस्थितियों को समाप्त करने के लिये संघर्ष करेगा।

११. ईश्वर में विश्वास

मनुष्य में दिव्यता विद्यमान है, इसमें कोई संशय नहीं है, तथापि उसके भीतर की आसुरी प्रवृत्ति इतनी प्रबल होती है कि जो व्यक्ति अपने बुरे विचारों से कठोर संघर्ष करके तथा उससे संयुक्त अपवित्र क्रियाओं को जो उसके ईश्वर की ओर अग्रसर होने में बाधक हैं, उन्हें रोकने का प्रयास कर रहा है, उस व्यक्ति के जीवन में ये आसुरी वृत्तियाँ महान बाधा उत्पन्न करती हैं। विषम परिस्थितियों में व्यक्ति का विश्वास कुछ क्षणों के लिये हिल जाता है और ऐसा लगता है कि उसका आत्मविश्वास भी नष्ट होने वाला है।

इस प्रकार की विषम परिस्थिति और अन्धकार में ईश्वर में विश्वास और उनकी करुणापूर्ण सहायता हमें आश्रय देती है। यदि हम ईश्वर की सहायता में विश्वास करें और निरन्तर उनसे प्रार्थना करें, तो वे हमें उन विषम परिस्थितियों से बचने तथा उनका अतिक्रमण करने की पर्याप्त शक्ति देते ही हैं, जो हमारे अन्दर की बुराइयाँ हमारे मार्ग को अवरुद्ध किये हुये हैं। दूसरी ओर ईश्वर भी हमें पुन: अविचलित, दृढ़ आत्मविश्वास और अजेय आस्था भी प्रदान करते हैं।

१२. पवित्रता में विश्वास

स्वामी विवेकानन्द जी ने एक स्थान पर कहा है – 'पवित्रता ही शक्ति है'। विश्व के इतिहास में हम पाते हैं कि महान चरित्रवान सभी नर-नारियों में निरपवाद रूप से उनके चरित्र में यह गुण (पवित्रता) विद्यमान था। वास्तव में मनुष्य के हृदय की अपवित्रता उसके हृदय में विद्यमान दिव्य प्रकाश को बादलों की तरह ढँक देती है। अपवित्रता व्यक्ति को अस्थायी रूप से नैतिक रूप से अन्धा और आध्यात्मिक रूप से पंगु बना देती है। अपवित्रता हमारे ऊपर अनैतिक और अशुद्ध विचारों तथा क्रियाओं के साथ आक्रमण करती है। अपवित्र विचार सर्वप्रथम हमारे ज्ञानचक्षु या विवेक पर परदा डाल देता है। यह हमारी विवेक-शक्ति को आच्छादित कर देता है। हमें हमारे इंद्रियों का दास बना देता है तथा अपवित्र विचारों और कार्यों में आसक्त होने को बाध्य करता है। हृदय की अपवित्रता दिव्य जीवन का महान शत्रु है। यह हमेशा नीचे गिराने का प्रयत्न करती है और व्यक्ति की दिव्यता को ढँक देती है। अपवित्र हृदयवाला व्यक्ति कभी भी चरित्रवान नहीं बन सकता। यहाँ हम एक बात याद रखें कि अपवित्र विचार उतने ही बुरे और अपवित्र हैं, जितना कि अनैतिक कार्य। इसलिये हमें सर्वदा सावधान रहना चाहिये, ताकि कोई भी अपवित्र और अनैतिक विचार हमारे मन में प्रवेश कर स्थान न बना सके। जैसे ही हमें ज्ञात हो कि कोई अपवित्र विचार हमारे मन में प्रवेश करने का प्रयास कर रहा है, वैसे ही हम तुरन्त अपने सकारात्मक विचारों को एकत्र करें और अपवित्र विचारों के विरुद्ध घोर संग्राम प्रारम्भ कर दें और उन्हें अपने मन से बाहर निकाल फेंके। अपने मन से अपवित्र विचारों को बाहर निकालने का एक अच्छा उपाय यह है कि जैसे ही ज्ञात हो कि कोई अपवित्र विचार हमारे मन में प्रवेश कर रहा है, वैसे ही उस समय हम अपने मन को बार-बार यह परामर्श दें – 'ऐ मेरे मन ! देखो, यह विचार तुम्हारा महान शत्रु है। यह तुम्हारे जीवन को नष्ट कर देगा। यह तुम्हारे व्यक्तित्व को विश्रृंखलित कर देगा। यह तुम्हारे चरित्र का हनन कर देगा और तुम्हें आध्यात्मिक साधना के अयोग्य बना देगा।" इस प्रकार अपने मन को सदा सूझाव देते रहें। यदि हम इस आत्मसूझाव-प्रवणता का अभ्यास जारी रखें, तो हम पायेंगे कि हमारे मन से अपवित्र विचार लुप्त हो रहे हैं। इतना ही नहीं बल्कि यदि हम अपने मन को ऐसे सूझाव निरन्तर देते रहें, तो हमारा मन इतना पवित्र और शक्तिशाली हो जायेगा कि षडरिपुओं के महाशस्त्र इन्द्रिय भोग की लिप्सा भी निष्क्रिय और व्यर्थ हो जायेगी। पवित्र हृदय वाला व्यक्ति ऐसी शक्ति अर्जित कर लेता है कि काम के प्रथम आक्रमण में ही वह शीघ्र ही उसे अस्वीकार कर, उसे पराजित कर देगा। हमें स्वामी विवेकानन्द जी के जीवन में ऐसा दृष्टान्त दृष्टिगोचर होता है, जब वे १८८४ में B.A. अंतिम वर्ष के छात्र थे। एक दिन वे शाम को अपने घर से लगभग दो मील दूर एक संगीत कार्यक्रम का आनन्द लेने के लिये अपने मित्रों के यहाँ गये थे। जब संगीत अपने पूर्ण उल्लास में पहुँचा था, तभी एक संवादवाहक दौड़ता हुआ आया और उन्हें यह हृदय-विदारक सूचना दिया कि उनके पिताजी की हृदयघात से मृत्यु हो गयी है। स्वामीजी दौड़ते-भागते घर पहुँचे और अपनी विधवा माँ, दो बहनों और दो छोटे भाइयों को विलाप करते हुये पाये। जो भी हो, स्वामीजी ने अपने पिताजी का अन्तिम संस्कार किया। कुछ ही दिनों में उन्हें ज्ञात हुआ कि उनके पिताजी थोड़ा-सा भी धन छोड़कर नहीं गये हैं। सम्पूर्ण परिवार को भंयकर गरीबी का सामना करना पड़ा। यहाँ तक कि दो समय का साधारण

(शेष अगले पृष्ठ पर)

बलजी भूरजी

रामेश्वर टांटिया

(लेखक १५ वर्ष की अवस्था में जीवन-संघर्ष के लिये जन्मभूमि त्यागकर कलकत्ता आये। कोलकाता की एक अंग्रेजी फर्म जे. टॉमस कम्पनी में साधारण हैसियत से काम शुरू किया। बाद में क्रमश: उन्नति करते हुए मुम्बई, असम और कोलकाता में विभिन्न उद्योग स्थापित किये। १९५७ ई. में लोकसभा के सदस्य निर्वाचित हुए और १९६६ ई. तक संसद सदस्य रहे। पाँच बार कांग्रेस पार्टी के कोषाध्यक्ष भी हुए। १९६८-७० ई. में आप कानपुर के मेयर थे। आप सुप्रसिद्ध 'ब्रिटिश इण्डिया कॉरपोरेशन' के प्रबन्ध निदेशक भी थे। आपने १९५०, १९६१, १९६४ ई. में तीन बार विदेश-यात्राएँ की। व्यवसायी तथा उद्योगपति होते हुये भी अत्यन्त सहृदय, साहित्यानुरागी तथा समाजसेवी थे। आपने अनेक ग्रन्थों की रचना की। प्रस्तुत है 'भूले न भुलाए' पुस्तक के कुछ अंश। – सं.)

आज से सत्तर-अस्सी वर्ष पहले राजस्थान के शेखावाटी अंचल में बलजी-भूरजी नामक डाकुओं का बड़ा दबदबा था। लोग उनके नाम से ही काँपने लगते थे। ऐसी भी घटनाएँ सुनने में आयीं कि हथियारों से लैस सौ-डेढ़ सौ बारातियों के दल को भी बलजी-भूरजी के पाँच-छह साथियों के सामने अपना सामान और धन-दौलत रख देना पड़ता था।

जो भी हो, उनका एक नियम था, उन्होंने कभी ब्राह्मण, हरिजन, गाँव की बहन-बेटी अथवा दु:खी-दरिद्र को नहीं सताया। इनके प्रति वे इतने सदाशय रहे कि कई बार तो प्राणों की बाजी लगाकर या गिरफ्तारी की जोखिम उठाकर भी वे गरीब ब्राह्मणों की कन्याओं के विवाह में मायरा (भात) भरने के लिये आया करते थे।

कुछ वर्षों बाद, उनके नाम का नाजायज फायदा उठाकर नानिया नाम का एक रूँगा (राजस्थान की एक छोटी जाति) अपने को बलजी बताकर निरीह लोगों को सताने लगा। इस बात की चर्चा बलजी-भूरजी तक भी जा पहुँची, परन्तु उन्होंने इस बात को गम्भीरता से नहीं लिया।

इसी बीच एक वारदात हो गयी। शेखावाटी के उत्तरी कोने में बिसाऊ नाम का एक कस्बा है। वहाँ के सेठ खेतसी दास पोद्दार अत्यन्त सरल और धर्मप्राण व्यक्ति थे। उनके दान-पुण्य की चर्चा पास-पड़ोस के अंचल में फैली हुई थी। लोग उनका नाम बड़े आदर से साथ लिया करते थे। जरूरतमन्दों की वे गुप्त रूप से सहायता करते; नाम या शोहरत की उन्होंने कभी परवाह नहीं की।

एक दिन सेठजी अपने चीलिये ऊँट पर सवार होकर पास के गाँव में रिश्तेदारी में जा रहे थे। उनके इस खास ऊँट की चर्चा आस-पास के गाँवों और कस्बों में थी। वह सवारी में जैसा आरामदेह था, वैसे ही चाल में चील की तरह तेज भी था। इसीलिये उसका नाम चीलिया ऊँट पड़ गया था। सेठजी के सफर में, आम तौर पर उनके साथ हमेशा एक-दो ऊँट या घोड़े और दो-चार सरदार रहते थे। किन्तु संयोग की बात है कि उस दिन वे अकेले ही थे।

पौष की संध्या थी। हल्की सर्दी पड़ने लगी थी, झुटपुटा हो चला था। सेठजी ने देखा कि रास्ते के किनारे एक अर्ध-नग्न वृद्ध उन्हें रुकने का संकेत कर रहा है। ऊँट को तेजी से बढ़ाकर वे उसके पास जा पहुँचे।

पिछले पृष्ठ का शेषांश

भोजन भी उनलोगों को मिलना कठिन हो गया। कभी-कभी तो वह भी उन्हें नहीं मिलता था। स्वामीजी समझ नहीं पा रहे थे कि क्या करें। कलकत्ता की गलियों में कोई नौकरी पाने के लिये स्वामीजी भटक रहे थे। लेकिन उनके सभी प्रयास व्यर्थ हो गये। उनका सारा पुरुषार्थ असफल हो गया। जब स्वामीजी इस प्रकार की विषम परिस्थिति में थे तब एक धनी महिला ने एक अनुचित प्रस्ताव उनके सामने रखा कि यदि वे उसके अनुचित प्रस्ताव को स्वीकार कर लें, तो वह अपनी सारी सम्पत्ति उन्हें देकर उनका आर्थिक अभाव दूर कर सकती है। स्वामीजी ने तत्काल उस प्रस्ताव को कालकूट विष के समान त्याग दिया। एक दूसरी महिला ने भी ऐसा ही प्रस्ताव भेजा था। स्वामीजी ने उससे कहा – तुमने अपना सम्पूर्ण जीवन शारीरिक सुख-भोग में नष्ट कर दिया। मृत्यु की काली छाया तुम्हारे सामने खड़ी है। क्या तुमने उसका सामना करने के लिये कोई तैयारी की है?

हमें ऐसा ही एक उदाहरण साधु वासवानी के जीवन में भी मिलता है, जब वे अखण्ड भारत के सिन्ध प्रान्त में एक महाविद्यालय में प्राध्यापक थे।

इस प्रकार की अद्भुत अजेय चारित्रिक शक्ति कहाँ से प्राप्त होती है? इन महान पुरुषों ने पवित्र विचारों का दिन-रात पोषण किया। उन लोगों ने इसे अपने जीवन का आदर्श बनाया कि मृत्युपर्यन्त वे लोग उतना ही पवित्र रहेंगे, जितना कि वे अपनी माँ के गर्भ से निकलते समय पवित्र थे। बहुत दिनों के कठिन अभ्यास के बाद उनका हृदय इतना पवित्र हो गया कि स्वप्न में भी बुरे विचार उनके मन में प्रवेश नहीं कर सके। यह है पवित्रता की अजेय शक्ति।

अब प्रश्न उठता है, "इस पवित्रता की शक्ति को कैसे प्राप्त करें?" ❖ (क्रमशः) ❖

पूछने पर पता चला कि वह भी उसी गाँव जा रहा है, जहाँ सेठजी को जाना था। उसके पैर में मोच आ गयी, इसीलिये लाचारी से बैठ जाना पड़ा। जाना जरूरी है, यदि सेठजी उसे साथ ले लें, तो बड़ी कृपा हो।

सेठजी ने ऊँट को बैठा लिया और वृद्ध को सहारा देकर अपने पीछे बैठाकर ऊँट को आगे बढ़ाया।

थोड़ी ही देर बाद उन्हें पीछे से, जोर का एक झटका लगा। वे ऊँट पर से नीचे गिर पड़े। दौड़ते हुये ऊँट पर से गिरने के कारण एक बार तो उन्हें बेहोशी ही आ गयी, परन्तु किसी तरह से वे सम्हल गये। एक पैर की घुटने की हड्डी टूट गयी थी, पीड़ा जोरों से बढ़ने लगी।

ऊँट स्वामीभक्त था और समझदार भी। बहुत मारपीट और खींचातानी करने पर भी वह आगे नहीं बढ़ा – अड़ गया और चिग्घाड़ने लगा।

सेठजी ने देखा कि ऊँट के सवार की सफेद दाढ़ी-मूछें हट चुकी थी, उसकी शक्ल बड़ी भयावनी दिखाई दे रही थी। वे असह्य पीड़ा से विकल हो रहे थे, फिर भी स्थिति समझने में उन्हें देर नहीं लगी। उन्होंने सवार से कहा – ''तुम्हारा परिचय जानना चाहूँगा।''

डाकू ने मूँछों पर हाथ फेरते हुये कहा – ''मैं बलजी का आदमी हूँ। उनका बहुत दिनों से इस ऊँट पर मन था, पर मौका नहीं लग रहा था। अब, आप या तो इस ऊँट को अपने संकेत से मेरे साथ जाने के लिये राजी कर दें, नहीं तो मुझे आपको इस दुनिया से उठा देना पड़ेगा।''

सेठजी बड़े मर्माहत हुए। उन्होंने बलजी-भूरजी से इस प्रकार धोखे की कल्पना नहीं की थी। उन्हें सहसा इस बात पर विश्वास भी नहीं हो पा रहा था। उन्होंने कहा – ''बलजी-भूरजी डाकू जरूर हैं, परन्तु अब तक तो कहीं ऐसा सुनने में नहीं आया कि कभी उन्होंने इस ढंग की धोखेबाजी की हो। मुझे इस बात में कुछ धोखा-सा लगता है। खैर, तुम जो कोई भी हो, तुम्हें जीण माता की सौगन्ध है कि आज की इस घटना की बात का कहीं भी जिक्र न करना। तुम चाहो तो ऊँट के साथ ऊपर से दो सौ रुपये और भी दे दूँगा।''

डाकू ने देखा कि उसका पाला एक अजीब आदमी से पड़ा है। ऊँट तो जा ही रहा है, कुछ रुपये भी देने को तैयार है। फिर ताज्जुब की बात तो यह भी है कि इस घटना के बारे में चुप रहने की शर्त रखता है।

कुछ असमंजस के साथ उसने सेठजी से शर्त को एक बार फिर समझाने को कहा। सेठजी ने बताया कि उन्हें भय है कि यदि इस घटना की चर्चा फैली, तो भविष्य में लोग अपरिचित बूढ़ों या असहाय राहगीरों की सहायता करने से डरेंगे। उन्हें इसमें धोखा नजर आयेगा। मनुष्य का अपनी ही जाति पर से विश्वास उठ जायेगा। तुमने बेकार ही इतना सब किया। तुम्हें ऊँट इतना अधिक पसन्द था, तो मुझसे यों ही माँग लेते।

इतनी बातें सुनने के बाद डाकू ने सेठजी से ऊँट को चलाने के लिये इशारा देने को कहा। सेठजी ने इशारा किया और ऊँट चल पड़ा। डाकू ने उन्हें बियाबान जंगल के बीच उसी घायल हालत में छोड़ दिया।

दूसरे दिन लोग सेठजी को ढूँढ़ते हुये वहाँ आ पहुँचे और उन्हें वापस घर ले गये। – क्या हुआ? ऊँट कैसे गया? – इसकी चर्चा को वे टाल गये।

असलियत बहुत दिनों छिपाये छिपती नहीं। बलजी-भूरजी को सेठजी के ऊँट गायब हो जाने की खबर लग गयी और यह भी पता चला कि नानिया रूँगा के पास एक बड़ा ऊँट है। वे सारी बातें समझ गये।

कुछ ही दिनों बाद सेठजी का ऊँट उनके नोहरे में बँधा हुआ मिला। उसके गले में बँधी एक दफ्ती पर लिखा था – ''सेठ खेतसीदास जी को बलजी-भूरजी की भेंट। वे डाकू जरूर हैं, मगर धोखेबाज नहीं।''

इसके ठीक अगले दिन झुंझुनू के निकट पहाड़ी की तलहटी में नानिया रूँगा की लाश पायी गयी। ❑❑❑

परख के मापदण्ड

हम लोगों को आजीवन यह बात सीखनी होगी कि प्रत्येक व्यक्ति की परख उसके अपने आदर्शों के अनुसार करनी चाहिए, दूसरों के आदर्शों के अनुसार नहीं। ऐसा न करके हम दूसरों को अपने आदर्शों की दृष्टि से देखते हैं। यह ठीक नहीं। अपने आसपास रहनेवालों के साथ व्यवहार करते समय हम सदा यही भूल करते हैं; और मेरे मतानुसार, दूसरों के साथ हमारी जो कुछ भी अनबन हो जाती है, वह अधिकतर इसी एक कारण से होती है कि हम दूसरों के देवता को अपने देवता के द्वारा, दूसरों के आदर्शों को अपने आदर्शों के द्वारा और दूसरों के उद्देश्य को अपने उद्देश्य के द्वारा परखने की चेष्टा करते हैं।

– स्वामी विवेकानन्द

लन्दन में स्वामीजी और महेन्द्रनाथ

स्वामी विदेहात्मानन्द

(१८९१ ई. में स्वामी विवेकानन्द ने उत्तरी-पश्चिमी भारत का भ्रमण करते हुए राजस्थान में भी काफी काल बिताया था। उसी समय उनका खेतड़ी-नरेश अजीत सिंह के साथ घनिष्ठ सम्पर्क हुआ। तदुपरान्त वे महाराजा तथा कुछ अन्य लोगों की सहायता से अमेरिका गये। वहाँ से उन्होंने महाराजा को अनेक पत्र लिखे। कई वर्षों तक धर्म-प्रचार करने के बाद वे यूरोप होते हुए भारत लौटे। फिर भारत में प्रचार तथा सेवा-कार्य के दौरान उनका राजपुताना तथा खेतड़ी-नरेश के साथ कैसे सम्पर्क रहा, प्रस्तुत है उसी का सविस्तार विवरण। – सं.)

अमेरिका से स्वामीजी ने दो बार लन्दन की यात्रा की थी। दूसरी बार की यात्रा में, वे १५ अप्रैल १८९६ को अमेरिका से रवाना हुए तथा २० अप्रैल को इंग्लैंड पहुँचकर श्री ई.टी. स्टर्डी के साथ ठहरे। उनके निर्देशानुसार, भारत से उनके गुरुभाई स्वामी सारदानन्द १ अप्रैल को ही वहाँ पहुँचकर उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। ४ मई से स्वामीजी के व्याख्यानों तथा कक्षाओं के माध्यम से कार्य आरम्भ होने वाला था।

लन्दन में एक दिन स्वामीजी ने खेतड़ी-नरेश की प्रशंसा करते हुए कहा था – "राजा अजीतसिंह कोई बहुत बड़े राजा तो हैं नहीं! एक साधारण-से petty chief (छोटे जगीरदार) हैं; ... तो भी वे (वराहनगर मठ चलाने के लिये) राखाल को रुपये देने को राजी हुए थे। खेतड़ी के राजा ने मुझे जो अभिनन्दन भेजा था, मैंने उसका रंगबिरंगा उत्तर लिखा था। राजाओं के भीतर थोड़ा क्षत्रिय भाव जगाने के उद्देश्य से ही मैंने खेतड़ी के राजा के अभिनन्दन का वैसा उत्तर लिखा था। पर देखा कि राजा का मन बड़ा सरल है, हृदय बड़ा विशाल है। राजा लोग तो सुरापान करते हैं, उससे कुछ फरक नहीं पड़ता, परन्तु मैंने देखा इस व्यक्ति के भीतर बहुत-से गुण हैं और मेरे प्रति अगाध विश्वास है।"[१]

महेन्द्रनाथ का लन्दन जाना (१८९६-९७)

स्वामीजी के भाई महेन्द्रनाथ की विशेष इच्छा थी कि वे भी अन्य युवकों के समान इंग्लैंड जाकर कानून की पढ़ाई करें। लगता है इस विषय में उन्हें खेतड़ी-राजा को कई बार लिखा था। १३ सितम्बर, १८९३ के पूर्वोद्धृत पत्र में उन्होंने कोलकाता से राजा को लिखा था – "महाराज पहले ही मेरे प्रस्ताव को अस्वीकार कर चुके हैं और शायद अब भी अस्वीकार करेंगे और जैसा कि मैं भलीभाँति जानता हूँ कि मेरे भैया ने मुझे इसके विरुद्ध सावधान किया था, यद्यपि स्वामी र (रामकृष्णानन्द) तथा स्वामी शरत् (सारदानन्द) ने बाद में उन्हें अमेरिका में लिखा। ... मैं कानून पढ़ने के लिये इंग्लैंड जाने का अपना प्रस्ताव आपको सूचित करता हूँ। इसमें ३ वर्षों के दौरान आनेवाला ७००० रुपयों का व्यय मेरी वर्तमान परिस्थितियों में नि:सन्देह अत्यधिक है। परन्तु कोलकाता का प्राय: हर परिवार बेहतर शिक्षा के लिये अपने बच्चों को इंग्लैंड भेज रहा है। स्वामी र (रामकृष्णानन्द), स्वामी शरत् (सारदानन्द) और स्वामी जोगेन (योगानन्द) की मुझसे पूर्ण सहमति है, परन्तु चूँकि वे, विशेषकर सभी सांसारिक विषयों में, दूसरों पर अपना मत नहीं थोपना चाहते, (अत:) उन्होंने पहले मुझसे आपको लिखने के लिये कहा है और जरूरत हुई तो अपनी इच्छा वे बाद में व्यक्त करेंगे, क्योंकि ऐसी चीजें उनकी जीवन-धारा से पूर्णत: पृथक् हैं। ... मैं इसे पूरी तौर से महाराज के ही विचार पर छोड़ता हूँ।"[२]

अन्तत: महाराजा ने महेन्द्रनाथ के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया था और कानून की पढ़ाई हेतु उनके लन्दन जाने का प्रबन्ध कर दिया था। तुरीयानन्दजी के वार्तालाप में भी लिखा है – "(महेन्द्र बाबू) खेतड़ी महाराज से खर्च लेकर बैरिस्टरी पढ़ने के लिये इंग्लैंड गये। स्वामीजी तब वहीं थे।"[३]

स्वामीजी के गुरुभाई स्वामी सारदानन्द के इंग्लैंड रवाना होने के करीब एक सप्ताह बाद ही स्वामीजी के भाई महेन्द्रनाथ भी कानून की पढ़ाई के लिये जलयान से इंग्लैंड के लिये रवाना हुए और सम्भवत: अप्रैल के दूसरे सप्ताह में लन्दन जा पहुँचे। महेन्द्रनाथ की आयु उस समय २६ वर्ष की थी।

स्वामीजी महेन्द्रनाथ के कानून की पढ़ाई करने के विरुद्ध थे। उन्होंने लन्दन से अमेरिका की श्रीमती ओली बुल के नाम ५ जून १८९६ को एक पत्र में लिखा है – "मुझे आपसे एक बड़े ही गम्भीर विषय पर राय लेनी है। आपको मालूम ही है कि मेरा भाई मोहिम पिछले दो महीनों से यहाँ लन्दन में है। उसका बैरिस्टर बनने का विचार है। वह कहता है कि उसकी इलेक्ट्रिकल इंजीनियरिंग में भी रुचि है।

१. लण्डने स्वामी विवेकानन्द (बँगला), भाग १, पृ. १५९-६०

२. इस लेखमाला का ४० वाँ लेख, विवेक-ज्योति, अप्रैल, २००८

३. स्वामी तुरीयानन्देर स्मृतिकथा (बँगला), संकलक – स्वामी चेतनानन्द, कोलकाता, सं. २००६, पृ. ४१४

"मेरे पिताजी यद्यपि वकील थे, तो भी मैं नहीं चाहता कि मेरे वंश का कोई वकील बने। मेरे गुरुदेव इसके विरोधी थे और मेरा भी विश्वास है कि जिस परिवार के कई लोग वकील हों, उस परिवार में कुछ-न-कुछ गड़बड़ी जरूर होगी। दूसरी बात यह है कि हमारा देश वकीलों से भर गया है – प्रतिवर्ष विश्वविद्यालयों से सैकड़ों वकील निकल रहे हैं और इसका एकमात्र फल यही है कि उन्हें भूखों मरना पड़ रहा है। इस समय हमारे देश को कर्मठता तथा वैज्ञानिक प्रतिभा की जरूरत है। इसलिए मैं उसे इलेक्ट्रिकल इंजीनियर बनाना चाहता हूँ। यदि कहीं वह जीवन में सफल नहीं हुआ, तो भी मुझे इस बात का सन्तोष रहेगा ही कि उसने देश के लिये महान् तथा ठीक-ठीक उपयोगी होने का प्रयास तो किया।

"निःसन्देह इलेक्ट्रिशियनों के प्रशिक्षण हेतु यहाँ (इंग्लैंड में) भी अच्छी संस्थाएँ हैं, परन्तु अमेरिका के वायुमण्डल में ही एक ऐसा गुण है, जो हर व्यक्ति के अन्दर निहित श्रेष्ठता को व्यक्त कर देता है। अतः मैं चाहता हूँ कि वह अमेरिका जाये और कुछ अच्छे इलेक्ट्रिशियनों के अधीन रहकर अपना भाग्य आजमाए। **खेतड़ी के राजा उसके लिये कुछ धन भेजेंगे।** मेरे पास ३०० पौंड है और मैं इसे पूरा-का-पूरा उसे दे सकता हूँ। आपने मुझे प्रतिवर्ष १०० डॉलर देने का वादा किया है। मुझे उसकी जरूरत नहीं। मैं चाहता हूँ कि मेरा भाई निडर तथा साहसी बने और अपने तथा अपने देश के लिए एक नया मार्ग खोलने हेतु संघर्ष करे। एक इलेक्ट्रिकल इंजीनियर भारत में आसानी से अपना जीवन-निर्वाह कर सकता है। पिछले कुछ काल से वह मलेरिया से भुगत रहा है और अब भी उसे प्रायः हर पखवारे बुखार आ जाता है – अन्यथा वह सबल है। वह एक बड़ा अच्छा लड़का है, थोड़ा शुद्धतावादी, जैसा कि मैं अपनी तरुणाई में था। **मेरे देश को इस समय साहस तथा वैज्ञानिक शिक्षा की जरूरत है।** मैंने सारी बातें आपके सामने रख दी हैं और आपके उत्तर की प्रतीक्षा कर रहा हूँ। प्रारम्भ के कुछ महीने – जब तक कि पाश्चात्य जीवन तथा रीतियों को समझना आरम्भ नहीं कर देता, तब तक उसकी देखरेख की जरूरत होगी।"[४]

जब स्वामी सारदानन्द तथा गुडविन को इंग्लैंड से अमेरिका भेजने की बात चल रही थी, तब भी स्वामीजी ने कहा था – "यहाँ की अपेक्षा महिम के लिये नये देश अमेरिका जाना ही अच्छा होगा। इंग्लैंड पुराना देश है,... सभी विषयों में एक प्रकार का जड़ता का भाव है, सब पुराने चाल पर चलता है। (परन्तु) अमेरिका विद्युत् और जीवनी शक्ति से भरा पड़ा है। वहाँ रहने से व्यक्ति अपने आप ही उत्साह से भर उठता है। देखो न, यूरोपीय महाद्वीप से चलकर कितने ही लोग कन्धे पर पोटली लिये न्यूयार्क के बन्दरगाह पर उतरते हैं। डरते हुए रास्तों पर चलते हैं, कदम-कदम पर संकुचित होते हैं, किसी भी होटल में घुसने का साहस नहीं करते; (पर) दो महीने बाद ही देखने में आता है कि वही आदमी अच्छे पोशाक धारण किये हुए, शान से सड़क पर चलता है, पूरी तौर से एक स्वाधीन अमेरिकन में परिणत हो जाता है। अमेरिकावासियों में एक प्रदीप्त जीवन है, एक तरह का तेज है। महिम के लिये भी वहीं जाना उचित होगा।"[५]

परन्तु महेन्द्रनाथ को अमेरिका भेजने और उन्हें इलेक्ट्रिकल इंजीनियर बनाने की स्वामीजी की योजना पूरी नहीं हो सकी थी। महिम अमेरिका नहीं गये। उन्होंने गुडविन को बताया था – "अमेरिका में सब ठीक है, परन्तु लंदन के ब्रिटिश म्यूजियम जैसा ग्रन्थालय कहीं भी नहीं है। इसे छोड़कर मेरी अन्यत्र कहीं भी जाने की इच्छा नहीं है।"[६]

जॉन पियर फॉक्स नामक एक अमेरिकी युवक बोस्टन से आर्किटेक्चर की पढ़ाई करने इंग्लैंड आये और लगभग ६ जून (१८९६) को लन्दन पहुँचे। महेन्द्रनाथ ने लिखा है – "फॉक्स स्वामीजी के बड़े अनुरागी थे। अमेरिका के कैम्ब्रिज नामक ग्राम में स्थित श्रीमती ओली बुल के मकान में जब एक धर्म-सम्मेलन हुआ था, तो उन्होंने उसके सचिव का उत्तरदायित्व निभाया था। उनके युवा होने पर भी स्वामीजी के पूर्व-परिचित होने के कारण सभी का उन पर विशेष स्नेह था। सारदानन्दजी के साथ उनकी विशेष घनिष्ठता हो गयी।"[७] जॉन फॉक्स कैम्ब्रिज स्ट्रीट पर स्थित एक लॉज में निवास करने लगे। बाद में मिस मूलर के निवास में स्थानाभाव के कारण महेन्द्रनाथ भी उन्हीं के साथ रहने चले गये।[८]

स्पष्ट रूप से कहा नहीं जा सकता कि उन्होंने इंग्लैंड में ही कानून की पढ़ाई आरम्भ की थी या नहीं। परन्तु वे वहाँ के ग्रन्थालय से पुस्तकें लाकर इतिहास, दर्शन आदि विविध विषयों के ग्रन्थों का अध्ययन किया करते थे। स्वामीजी ने इंग्लैंड में करीब आठ माह बिताये थे, उन्होंने उस काल के अनेक संस्मरण बँगला भाषा में 'लण्डने स्वामी विवेकानन्द' नामक अपने तीन खण्डों के ग्रन्थ में लिपिबद्ध किये हैं।

स्विटजरलैंड में भ्रमण के दौरान स्वामीजी ने २३ अगस्त १८९६ को स्टर्डी के नाम एक पत्र में लिखा था – "महिम तथा फॉक्स से भेंट होने पर उन्हें मेरा स्नेह ज्ञापित करना।"[९]

---

४. Swami Vivekananda in the West – New Discoveries, Advaita Ashrama, Kolkata, Vol. 4, Ed. 1986, P. 179-80; विवेकानन्द साहित्य, प्रथम संस्करण, खण्ड ४, पृ. ४०६-०७; अचेना अजाना विवेकानन्द, शंकर, कोलकाता, सं. २००३, पृ. ६९

५. लण्डने स्वामी विवेकानन्द (बँगला), भाग २, पृ. ६०-६१

६. वही, भाग २, पृ. ६१; ७. वही, भाग १, पृ. ६७

८. Swami Vivekananda in the West – New Discoveries, Kolkata, Vol. 4, Ed. 1986, P. 172, 181

९. Complete Works of Swami Vivekananda, Vol. V, P. 112-3

स्मरणीय है कि महेन्द्रनाथ खेतड़ी-नरेश की आर्थिक सहायता से ही इंग्लैंड आये थे और वहाँ उनके निवास तथा अध्ययन आदि का व्यय-भार भी राजाजी ही वहन करते थे।

लन्दन से स्वामीजी का कार्य

अपनी इस दूसरी लन्दन-यात्रा के दौरान स्वामीजी ने वहाँ लगभग आठ महीने बिताये। उस दौरान उन्होंने अनेक संस्थाओं तथा सभागारों में भारतीय संस्कृति तथा वेदान्त विषय पर बहुत-से व्याख्यान दिये। इन्हीं दिनों उनका भारतीय सेना एक सेवानिवृत्त कप्तान सेवियर तथा उनकी पत्नी से परिचय हुआ। यह दम्पति स्वामीजी पर इतनी मुग्ध हुई कि उन्होंने तत्काल स्वामीजी का शिष्यत्व स्वीकार किया और तन-मन-धन से स्वामीजी के कार्य में लग गये। २८ मई को वे सुप्रसिद्ध विद्वान् प्रोफेसर मैक्समूलर से भी मिलने गये।

इंग्लैंड में कठोर परिश्रम से स्वामीजी थक गये थे। उनके मित्रों ने उन्हें यूरोप की एक अवकाश-यात्रा पर ले जाने का प्रस्ताव रखा। तदनुसार वे ३१ जुलाई को अपने मित्रों के साथ स्विटजरलैंड की यात्रा पर चल पड़े। वहाँ से लौटते समय उन्हें कील विश्वविद्यालय के प्रोफेसर पॉल डायसन का निमंत्रण मिला और वे उनसे मिलने जर्मनी भी गये। इसके बाद पुनः इंग्लैंड लौटकर उन्होंने 'ज्ञानयोग' विषयक अनेक व्याख्यान दिये। ब्रिटिश राज-परिवार की कुछ महिलाएँ भी छद्मवेश में इन व्याख्यानों में उपस्थित रहा करती थीं।

लन्दन के कार्य में एक सहयोगी की जरूरत पड़ी, तो उन्होंने एक अन्य गुरुभाई स्वामी अभेदानन्द को लन्दन बुला भेजा। स्वामीजी ने एक पत्र में (जो सम्भवतः जुलाई १८९६ का है) उन्हें विभिन्न प्रकार के निर्देशों के अलावा यह भी लिखा – "बम्बई पहुँचकर मेसर्स किंग एण्ड कम्पनी के आफिस में जाकर कहना कि 'मैं स्टर्डी साहब का आदमी हूँ', इससे वे तुम्हारे लिए इंग्लैंड तक का एक टिकट देंगे।... **खेतड़ी के राजा साहब** को भी मैं इस आशय का एक पत्र लिख रहा हूँ कि उनके बम्बई के एजेंट तुम्हें अच्छी तरह से देख-भालकर टिकट आदि की व्यवस्था कर दें।"

पत्र के परिशिष्ट भाग में भी उन्होंने लिखा है – "इस पत्र को देखते ही **खेतड़ी के राजा साहब को लिखना** कि तुम बम्बई जा रहे हो, अतः उनके एजेण्ट तुम्हें जहाज में बिठाने के लिए सहायता करें।"[१०]

स्वामीजी की लन्दन से विदाई

लगभग साढ़े तीन वर्ष पाश्चात्य जगत् में बिताने के बाद, १६ दिसम्बर १८९६ को स्वामीजी अपने कई अंग्रेज शिष्यों के साथ इंग्लैंड से भारत की ओर लौट पड़े।

महेन्द्रनाथ का विश्व-भ्रमण

१६ दिसम्बर १८९६ में स्वामीजी के भारत रवाना होने के शीघ्र बाद ही महेन्द्रनाथ विविध देशों की यात्रा करने लगे। श्री स्टर्डी ने १८९७ की जनवरी में मिस मैक्लाउड को सूचित किया है – "मुझे मोहिम के बारे में कुछ भी नहीं मालूम। वह बिना कोई पता दिये ही दृष्टि से पूर्णतः ओझल हो गया है; मैंने उसके सारे पत्र डाकघर को लौटा दिये हैं।"

लगता है कि वे अपनी यात्राओं के बीच कभी-कभी लन्दन लौट आते थे और पुनः निकल जाते थे। १८९८ ई. में कुछ समय लन्दन में बिताने के बाद वे पुनः एक लम्बी यात्रा पर निकल चुके थे। उनके छोटे भाई भूपेन्द्रनाथ दत्त ने ७ जुलाई १८९८ को खेतड़ी के मुंशी जगमोहन लाल के नाम एक पत्र में लिखा है –

"प्रिय महोदय,

काफी समय से मेरा आपके साथ कोई पत्र-व्यवहार नहीं हुआ है। मुझे सूचना मिली है कि मेरे बड़े भाई इस समय तुर्की में हैं और वहाँ से वे फारस, तिब्बत, मंगोलिया और चीन की दीवार तक यात्रा करनेवाले हैं। उन्होंने स्वामी सारदानन्द के एक मित्र अमेरिका के श्री टी. को ऐसा लिखा है और उन्होंने इस विषय में स्वामी सारदानन्द को सूचित किया है। हम सभी यहाँ सकुशल है और आशा करते हैं कि आप और महाराजा भी सकुशल होंगे।

आपका विश्वस्त ***भूपेन्द्रनाथ दत्त***[११]

अपने इन भ्रमणों के दौरान बीच-बीच में महेन्द्रनाथ ऐसे गायब हो जाते थे कि किसी को पता ही नहीं रहता था कि वे कहाँ हैं। स्वामीजी के एक युवा शिष्य अक्षय कुमार घोष भी लन्दन में रहकर कानून की पढ़ाई कर रहे थे। वहाँ आर्थिक संकट में पड़कर उन्होंने ३ जनवरी, १८९९ को खेतड़ी-नरेश के नाम एक पत्र लिखकर बताया कि १९ महीनों से महेन्द्रनाथ का कहीं पता नहीं है और पूछा कि क्या वे उनके लिये राजाजी द्वारा स्टर्डी के सुरक्षित रखे हुए २० पौंड को अपने कॉलेज की फीस के लिये खर्च कर सकते हैं।[११]

स्वामीजी भी महिम के बारे में चिन्तित थे। बाद में उनकी सूचना मिलने पर उन्होंने १४ अगस्त, १९०० को पेरिस से भगिनी क्रिस्टिन को एक पत्र में लिखा – "मुझे अपने खोये हुए भाई का समाचार मिला है। वह बड़ा घुमक्कड़ है, अच्छा ही है। देखो, क्रमशः बादल छँट रहे हैं।"[१२]

उसी दिन (१४ अगस्त, १९००) उन्होंने जॉन फॉक्स के नाम पत्र में लिखा था – "कृपया महिम को यह लिखकर

१०. विवेकानन्द साहित्य, प्रथम संस्करण, खण्ड ४, पृ. ३४९-५१; तथा खण्ड ५, ४०२-०३

१०. Swami Vivekananda : A Forgotten Chapter of His Life, Second Edition 1982, p. 181 ११. वही, पृ. १८५-८६

१२. Complete Works of Swami Vivekananda, Vol. 9, P. 147

सूचित कर दें कि वह चाहे जो कुछ भी क्यों न करे, मेरा आशीर्वाद उसे सदा ही मिलता रहेगा। और वर्तमान में वह जो कुछ कर रहा है, नि:सन्देह वह वकालत से बहुत-कुछ अच्छा है। वीरता तथा साहस को मैं पसन्द करता हूँ और मेरे देश के लिए उस तरह की तेजस्विता विशेष आवश्यक है। परन्तु मेरा स्वास्थ्य बिगड़ता जा रहा है; और मुझे अधिक दिन जीवित रहने की आशा नहीं है; अत: वह माँ तथा पूरे परिवार के उत्तरदायित्व ग्रहण करने के लिए तैयार रहे। किसी भी क्षण मेरी मृत्यु हो सकती है। इस समय मैं उसके लिए अत्यन्त गर्व का अनुभव कर रहा हूँ।''[१३]

२० मार्च १९०१ को स्वामीजी ढाका से श्रीमती ओली बुल के नाम एक पत्र में लिखते हैं – ''मेरा भाई महिम इस समय भारत में, मुम्बई के पास कराची में है और सारदानन्द के साथ पत्र-व्यवहार रखता है। उसने लिखा है कि वह बर्मा, चीन आदि जा रहा है। जो व्यापारी लोग उसे लोभ दिखाकर ले जा रहे हैं, उन सभी स्थानों में उन लोगों की दुकानें हैं। मैं उसके बारे में जरा भी चिन्तित नहीं हूँ।''[१४]

महेन्द्रनाथ की यात्राओं के कुछ स्मृति-कथाएँ 'उद्‌बोधन' पत्रिका के विभिन्न अंकों में प्रकाशित भी हुई हैं।

बाद में खेतड़ी-नरेश के देहान्त तथा उनसे प्राप्त होनेवाली आर्थिक सहायता बन्द हो जाने पर महिम को अपने परिवार के भरण-पोषण की चिन्ता हुई। उन्होंने २४ अप्रैल १९०२ को श्रीनगर (कश्मीर) से स्वामी सदानन्द को लिखा – ''मुझे जो सूचना मिली है, उससे मुझे लगता है कि मेरी माँ की परिस्थितियाँ ठीक नहीं हैं और मुझे उनकी देखभाल करनी होगी। अब मुझे काम करना होगा और धन कमाकर उन्हें ठीक से रखना होगा। यद्यपि इस समय मध्य एशिया जाने का एक अच्छा अवसर है और मेरा स्वभाव तथा आकांक्षा भी यात्रा करके पुरातत्त्व, लोग तथा उनके जीवन की अद्‌भुत चीजें देखने की है, पर कुछ काल के लिये मुझे ऐसे सारे विचारों को रोकना होगा। सर्वदा मेरा विश्वास था कि मेरा परिवार सकुशल है, इसीलिये मैं बिना किसी भय या चिन्ता के चक्रवात की भाँति देश-देशान्तर में भ्रमण करता रहा, पर लगता है कि अब परिस्थितियाँ बदल गयी हैं।''[१५]

मद्रास में स्वामीजी और राजा का अभिनन्दन-पत्र

विदेश से लौटकर २६ जनवरी (१८९७) को स्वामीजी का भारतभूमि पर प्रथम पदार्पण पाम्बन में हुआ। इसके बाद रामेश्वरम्, मदुरै, कुम्भकोणम् आदि स्थानों पर उनका भव्य स्वागत हुआ। असंख्य लोगों के अभिनन्दन का उत्तर देते हुए ६ फरवरी को वे मद्रास पहुँचे। ८ फरवरी के अपराह्न में विक्टोरिया हॉल में उनके सार्वजनिक अभिनन्दन की व्यवस्था थी। उन्हें विभिन्न सभा-समितियों तथा सम्प्रदायों की ओर से अंग्रेजी, संस्कृत, तमिल, तेलगु आदि भाषाओं में करीब २० अभिनन्दन-पत्र प्रदान किये गये। सभा में सर्वप्रथम नगरवासियों की ओर से और उसके बाद मुंशी जगमोहनलाल द्वारा खेतड़ी के राजा द्वारा प्रेषित निम्नलिखित मानपत्र पढ़ा गया –

''पूज्यपाद स्वामीजी, आपके विदेश से सकुशल भारत लौट आने और मद्रास पधारने तथा इस अभिनन्दन के अवसर पर मैं पर अपने हर्ष तथा आनन्द के भाव के व्यक्त करना चाहता हूँ। मैं आपको उन पाश्चात्य देशों में आपके नि:स्वार्थ कार्यों से प्राप्त हुई सफलता पर हार्दिक बधाई देता हूँ, जहाँ के मूर्धन्य विद्वानों का दावा है कि – ''जिस किसी भी क्षेत्र में विज्ञान ने अपना अधिकार जमा लिया है, धर्म की मजाल नहीं कि वहाँ की एक इंच भी धरती दुबारा वापस पा सके'' – यद्यपि विज्ञान ने शायद ही कभी सच्चे धर्म का विरोध किया हो। हमारा यह पवित्र आर्यावर्त देश, इस दृष्टि से विशेष भाग्यशाली है कि वह शिकागो की धर्म-महासभा में भेजने के लिये अपने ऋषियों का आप जैसा एक सुयोग्य के प्रतिनिधि प्राप्त कर सका; और यह केवल आपकी ही विद्वत्ता, उद्यम तथा उत्साह का फल है कि पाश्चात्य देशवाले भलीभाँति जान गये हैं कि भारत के पास आज भी आध्यात्मिकता का अक्षय भण्डार है। आपके प्रयत्नों के फलस्वरूप आज यह बात असन्दिग्ध रूप से सिद्ध हो चुकी है कि दुनिया के विविध मतवादों के विराधाभास का सामंजस्य केवल वेदान्त के सार्वभौम प्रकाश में ही सम्भव है। अब दुनिया के सारे राष्ट्रों को इस महान् सत्य को समझ लेना तथा व्यावहारिक रूप से स्वीकार कर लेना चाहिये कि ब्रह्माण्ड के विकास में 'विविधता में एकता' ही प्रकृति की योजना रही है; और साथ ही विभिन्न धर्मों के बीच समन्वय, भाईचारे, आपसी सहानुभूति तथा सहयोग के द्वारा ही मनुष्य-जाति नियति तथा चरमोद्देश्य की सिद्धि हो सकती है। आपके महान् तथा पवित्र नेतृत्व और आपकी उदात्त शिक्षाओं के प्रेरणादायी प्रभाव के फलस्वरूप हम वर्तमान पीढ़ी के लोगों को, विश्व-इतिहास के एक नवीन युग का सूत्रपात देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, जिसमें मुझे आशा है कि धर्मान्धता, घृणा तथा संघर्ष का नाश होकर, मनुष्यों के बीच शान्ति, सहानुभूति तथा प्रेम का साम्राज्य स्थापित होगा। मैं अपनी प्रजा के साथ ईश्वर से यह प्रार्थना करता हूँ कि आप तथा आपके कार्यों पर उनकी कृपा सदैव बनी रहे।''[१६]

❖ **(क्रमश:)** ❖

१३. विवेकानन्द साहित्य, सं. १९६३, खण्ड ८, पृ. ३४८-४९

१४. Complete Works of Swami Vivekananda, Vol. 9, P. 152

१५. महेन्द्रनाथ दत्त – जीवन ओ मनीषा (जन्म-शताब्दी स्मृति ग्रन्थ), सं. सुनील विहारी घोष, कोलकाता, १९७०, पृ. २२-२३

१६. विवेकानन्द साहित्य, सं. १९६३, खण्ड ५, पृ. ९७-९८ तथा Lectures from Colmbo to Almora, Ed. 1984, P. 115-16

हमारी बुआ-माँ

गोपालचन्द्र मण्डल

(माँ श्री सारदा देवी दैवी-मातृत्व की जीवन्त विग्रह थीं। उनके अनेक शिष्यों तथा भक्तों ने उनकी मधुर-पावन स्मृतियाँ लिपिबद्ध कर रखी हैं। बँगला ग्रन्थ 'श्रीश्री मायेर पदप्रान्ते' से इस लेख का अनुवाद किया है इलाहाबाद की श्रीमती मधूलिका श्रीवास्तव ने। – सं.)

मैं १९१५ से १९१८ ई. के मध्यवर्ती काल की बातें कह रहा हूँ। उस समय मैं काफी बड़ा हो चुका था। १६-१७ वर्ष की आयु थी, अत: बहुत-सी बातें स्मरण हैं। मुझे माँ के नये मकान बनने की याद है। शरत् महाराज (स्वामी सारदानन्द) आकर जयरामबाटी में ठहरे थे। मास्टर महाशय (श्रीम) का जयरामबाटी आना याद है। राधू और उसके पति की बातें भी बहुत याद आती हैं। सर्वोपरि माँ सारदा अर्थात् हमारी 'बुआ-माँ' की बातें याद आती हैं।

माँ को हम लोग 'बुआ' कहते थे। और वे मेरी माँ को 'बहू' और दादी को 'काकी' कहकर सम्बोधित करतीं। मेरे पिता भूषण मण्डल माँ से उम्र में कुछ छोटे थे। वे और माँ, बुआ (श्रीमाँ) को 'दीदी' कहते। मेरी दादी सत्यभाभा, 'बुआ' को दक्षिणेश्वर ले जातीं। जयरामबाटी से कामारपुकुर या सिहड़ जाते समय भी 'बुआ' दादी को अपने साथ ले जातीं। 'बुआ' के नये मकान के पास जो पुण्यपुकुर तालाब था, उसी के किनारे हमारा घर था। उन्होंने हम लोगों के समक्ष अपना स्वरूप तो प्रगट नहीं किया, पर बाद में समझा है, इतनी समाधि में रहना किसी मनुष्य के लिये सम्भव नहीं। उनके जीवन की साधारण-सी लगने वाली घटना भी आज विचार करने पर अस्वाभाविक लगती है। वे मनुष्य नहीं थीं, इसीलिये उनके लिये ऐसा – अति सहज –अति सरल जीवन-यापन सम्भव हो सका था।

हमारे घर में उनका खूब आना-जाना था। कभी-कभी वे शाम को भोजन के बाद आतीं और दादी के साथ बातें करतीं। किसी-किसी दिन शाम को सहसा कोलकाता से चार -पाँच भक्त आ जाते। बुआ आकर माँ से कहतीं – "ओ बहू, कुछ साग-सब्जी हो तो दे दो, बहुत दूर से चार लड़के आये हैं।" माँ जल्दी-जल्दी आलू, तरोई, कुम्हड़ा या जो भी रहता, दे देती। मुझे याद है, एक बार शाम को मैंने लौकी की बेल से एक लौकी काटा और ले जाकर उन्हें दिया था। साधारण-सी चीज को भी वे जैसे असाधारण बनाकर भाइयों की गृहस्थी को आलोकित किये रखतीं, वैसे ही किसी भक्त को यह नहीं समझने देती थीं कि गृहस्थी में कोई अव्यवस्था भी है ! बुआ के भाइयों का परिवार तो बहुत बड़ा था। बहुत से छोटे-छोटे बच्चे थे। भाइयों की कमाई भी उतनी नहीं थी।

मनुष्यों के समान ही पशु-पक्षियों के प्रति भी उनकी बड़ी स्नेह-ममता थी। उनके पाले हुए तोते – गंगाराम के बारे में माँ की जीवनी में लिखा है। उन्होंने पाँच-छह बिल्लियाँ भी पाल रखी थीं। बुआ जब खाने बैठतीं, तो ये बिल्लियाँ भी उनके पास चुपचाप बैठी रहतीं। बुआ अपना भोजन समाप्त करके उनके पत्तल में खाना देतीं। वे कैसी भाग्यवान थीं !

बुआ के पास चार गायें थीं – महन्त, महाराज, लक्ष्मीकान्त, इन्द्रराज। गृहस्थी के सारे कामों के दौरान भी बीच-बीच में आकर वे गायों को सहला जातीं। भात का माँड पिलाने आतीं। आकर उनके शरीर, गले, सिर पर हाथ फेर जातीं। कभी उनके सींग में तेल लगातीं।

गायों की देखभाल के लिये दीनू नाम का एक लड़का था। वह हम लोगों की ही आयु का था। यदि आज वह जिन्दा होता, तो उससे बुआ के बारे में बहुत-सी बातें सुनने को मिलतीं। बुआ उसे बड़ा स्नेह करती थीं। दीनू-विषयक एक घटना याद आ रही है। दीनू नाश्ते के बाद सुबह करीब ९ बजे गायों को मैदान में चराने ले जाता। वह दोपहर में करीब १ बजे लौटता। उसके बाद वह गायों को बाँधने के बाद नहाकर खाने बैठता। पर सबका खाना-पीना हो जाने पर भी बुआ दीनू की प्रतीक्षा करती रहतीं। एक दिन दीनू के लौटने में बड़ी देर हुई। दीनू मैदान में जाकर अन्य चरवाहों के साथ गोलियाँ (कंचे) खेलता था। उस दिन इसी प्रकार खेलते-खेलते लौटने में देर हो गयी। बुआ बड़ी देर तक प्रतीक्षा करने के बाद, जब तीन से ऊपर बज गया, तो घर की स्त्रियों के अनुरोध पर वे दीनू का खाना लगाने के बाद उसे ढँककर ज्योंही खाने को बैठीं, त्योंही दीनू लौटा। दीनू को देखकर बुआ ने पूछा, "क्यों बेटा, इतनी देर हो गयी। देख न, इन लोगों ने मुझे जिद करके खाने को बैठा दिया। मैंने तेरा खाना लगाकर रख दिया है। तू नहाकर ढक्कन हटाकर भोजन कर ले।" दीनू तुरन्त नहाकर खाने बैठा, बुआ भी खा रही थीं। दीनू का खाना लगभग समाप्त हो चुका था। बुआ ने कहा, "बेटा दीनू, और थोड़ा भात लेगा?" दीनू आगा-पीछा करने लगा, क्योंकि बुआ खा रही

थीं और पास में दूसरा कोई और नहीं था, जो भात देता। उस समय भी बुआ का खाना समाप्त नहीं हुआ था। काफी आयु हो गयी थी, सारे दाँत भी नहीं थे, इसीलिये धीरे-धीरे खाती थीं। सारी बात समझकर बुआ ने दीनू से कहा, "बेटा, थाली इधर लाओ।" दीनू के थाली के पास ले आने पर बुआ ने अपनी थाली में से थोड़ा-सा भात दीनू की थाली में डाल दिया। दीनू ने उसे परम तृप्ति के साथ खाया। अगले दिन बुआ को अकेले पाकर दीनू ने पूछा, "अच्छा माँ, एक बात पूछूँ?" बुआ बोलीं, "बोलो न बेटा, क्या कहना है?"

दीनू – अच्छा माँ, क्या तुम लोगों का भोजन अलग पकता है और हम लोगों का अलग पकता है?

बुआ – यह क्या बेटा? ऐसी बात क्यों कहते हो?

दीनू – तो कल तुम्हारी थाली का भात इतना स्वादिष्ट क्यों लगा? ऐसा भात तो मैंने जीवन में कभी नहीं खाया!

बुआ – नहीं बेटा! भात तो एक ही हण्डी में पकता है। जिस हण्डी का भात तुझे दिया था, उसी का तो मैंने भी लिया था।

बुआ ने अपने देवी ऐश्वर्य की बात छिपा लिया। उनका प्रसादी अन्न जिस अमृत में परिणत हुआ था, उसे दीनू भला कैसे समझ पाता! दीनू महा-भाग्यवान था – जिसे उनका महा-प्रसाद प्राप्त हुआ था!

बुआ को यात्रा (धार्मिक नाटिका) देखना बड़ा पसन्द था। उन दिनों गाँव में आजकल की तरह रेडियो या सिनेमा का प्रचलन नहीं था। अत: गाँव में किसी तीज-त्योहार को निमित्र बनाकर बाउल-गान, तरजा (गीत-स्पर्धा), यात्रा (नाटिका), रामायण-गान, चौबीस-प्रहर, मनसा-पांचाली आदि का आयोजन होता। 'चौबीस-प्रहर' में भागवत कथा गाने के लिये नदिया के नारायणपुर की टोली, पश्चिम के रामडिया की टोली और वरणगंगा की टोली आया करती थी। जेठ के महीने में गाँव में शीतला-माँ की पूजा होती थी। उस समय 'चौबीस-प्रहर' और 'यात्रा-नाटिका' होती। आश्विन-कार्तिक में सिंहवाहिनी मन्दिर के तले रामायण-गान और 'यात्रा-नाटिका' होती। रामायण गाने के लिये पुकुरिया के बाँकू घोषाल और भुरसुबो ग्वालों की बहुओं के साथ बुआ की बड़ी घनिष्ठता थी। वैसे

के सतीश आचार्य आते। बुआ के प्रति उन लोगों की खूब श्रद्धा-भक्ति थी। दो प्रकार की यात्रा-नाटिकाएँ होतीं – कृष्ण-यात्रा और साधारण यात्रा। कृष्ण-यात्रा गाने के लिये शिहड़ के रामछूतोरे की टोली और बेजो-संतोषपुर के नलिनी मण्डल तथा अनुकूल मण्डल की टोली आती। जगद्धात्री पूजा के समय मैंने कई बार कृष्ण-यात्रा होते देखा है। जहाँ तक मुझे याद है साधारण यात्रा में उन दिनों प्रह्लाद-चरित, ध्रुव-चरित, निमाई-संन्यास, नबाब सिराजुदौल्ला आदि होता था। पेट्रोमेक्स के प्रकाश में यात्रा होती। साधारण यात्रा के लिये कुमुड़से-कानपुर की टोली, रामजीवनपुर की टोली तथा बगछड़ी की टोली जयरामबाटी में यात्रा कर गयी हैं। जगद्धात्री पूजा के समय बाउल-गान और तरजा (गीत-स्पर्धा) होता था। क्षुदीराम गोद और सातबेड़े के लालू जेले बाउल-गान करने आते। बुआ लालू से बड़ा स्नेह करती थीं। सातबेड़े के पाँचूराय, मुईदाड़ा के मृगेन्द्र धाड़ा आदि तरजा गाते। मनसा-मन्दिर के नीचे बीच-बीच में मनसा की पाँचाली और मनसा के विसर्जन के गान होते। दल का नाम मुझे याद नहीं, पर लोग कहते बेंगाई और पाँचाली के दल।

बुआ यह सब बड़े आनन्द से सुनतीं। बचपन से ही मैंने बुआ को कई बार यात्रा, रामायण-गान, बाउल-गान, तरजा आदि सुनते देखा है। उस समय पानी का घड़ा और पान का डिब्बा उनके पास रहता था। वे पूरा कार्यक्रम देखकर ही घर लौटतीं। उन दिनों ये सारे कार्यक्रम देर रात में शुरू होकर भोर में समाप्त होते। रात में जागकर यात्रा देखने के बावजूद भी वे सुबह ठीक समय पर उठ जातीं और नित्य-पूजा तथा गृहस्थी के सारे काम निपटातीं।

मैंने बुआ के सभी भानजियों तथा उनके पतियों को देखा है। राधू ने तो बुआ को बड़ी तकलीफ दी थी। देखकर हम लोगों को खूब कष्ट होता और क्रोध भी आता। जब ललित बाबू[१], शरत् महाराज, मास्टर महाशय आते, तो जयरामबाटी में मानो आनन्द का हाट लग जाता। इस समय तो कोलकाता से रोज ही बहुत-से लोग जयरामबाटी आते हैं, परन्तु उन दिनों वहाँ का परिवेश बिल्कुल ही अलग था। पहले बुआ के घर पर गाय नहीं थी। कोलकाता से भक्तों के आने पर चाय के लिये दूध की जरूरत पड़ती थी। उस समय बुआ ग्वालों के मुहल्ले में जातीं। लबू नाग, श्रीराम नाग, बिहारी माल आदि दूध का व्यवसाय करते थे। आह्लादिनी, नयना आदि ग्वालों की बहुएँ बुआ को माँ-ठाकुरानी कहा करती थीं।

१. ललितमोहन चट्टोपाध्याय। अपने तेजस्वी स्वभाव के कारण भक्तों में वे 'कैसर' नाम से परिचित थे। वे सपत्नीक माँ के मंत्र-शिष्य थे। माँ की सेवा में वे सदैव तत्पर रहते थे। जयरामबाटी में माँ को सुनाने के लिये वे पहली बार ग्रामोफोन ले गये थे। ग्रामोफोन सुनने के लिये माँ के घर पर गाँव के लोगों की भीड़ लग जाया करती थी।
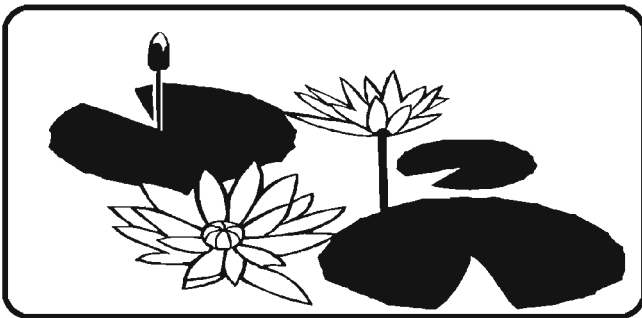
भी किसी के गाय के बच्चा होने पर वे लोग ठाकुर के भोग के लिये माँ के घर दूध दे जाते थे। अचानक दूध की जरूरत पड़ जाने पर कोई भी बुआ को खाली-हाथ नहीं लौटाता था। परन्तु बुआ के भाइयों या भतीजियों को कोई आसानी से कुछ देना नहीं चाहता था। बुआ को ही सब लोग सब कुछ देना चाहते थे। उन्हें देकर मानो वे लोग धन्य हो जाते।

दादी के मुख से सुनी एक घटना याद आ रही है। दादी कहती, "अरे, मुखर्जियों की सारू ऐसी-वैसी नहीं है, बाद में समझोगे। वह देवी है! एक बार लगातार दो वर्ष अकाल पड़ा; वर्षा नहीं हुई। खेत की फसल खेत में ही सूख गयी। हमारी थोड़ी-सी जमीन का धान किसी तरह बचा हुआ था। वह भी मरने की राह पर था। भादो का आकाश, पानी बिल्कुल भी नहीं था। (उन दिनों गाँव के पंच थे – राजकुमार मुखोपाध्याय, शिवराम बन्दोपाध्याय, सतीश सामुई, केदार घोष, कैलाश मण्डल, माखन मण्डल, योगीन्द्र विश्वास, नगेन्द्र बायेन, भूपति घोष आदि।) एक दिन गाँव के सभी पंच परस्पर चर्चा कर रहे थे कि अब भी पानी नहीं बरसा, तो बाल-बच्चे भूखे मर जायेंगे। उन लोगों ने जाकर सारू को पकड़ा। सारू बोली, 'ठाकुर से कहूँगी।' अगले दिन मूसलाधार वर्षा हुई। उस वर्ष इन जमीनों में जो फसल हुई, वैसी दुबारा नहीं हुई। समझा तूने, देव-माहात्म्य (देवकृपा) किसे कहते हैं!" यह घटना हमने भानु बुआ के मुख से भी सुनी है।

इस समय मेरी आयु ८६ वर्ष है।[२] मैं अब भी सकुशल जीवित हूँ। यह बुआ के ही आशीर्वाद से है। हमारे घर में बुआ के चरणों की धूल पड़ी है। कभी देखती कि वे रसोई-घर के पास माँ से बातें कर रही हैं, कभी देखती आँगन में दादी से बातें कर रही हैं। नेत्र बन्द करते ही सब कुछ जीवन्त होकर आँखों के सामने तैरने लगता है। उस समय हम लोग ठीक से समझ नहीं पाये थे, परन्तु साक्षात् जगदम्बा को देखा है और उनके चरण छुए हैं! ... कितनी पुरानी बातें हैं! लेकिन सब मेरे मन में तह-की-तह सजाकर रखी हुई हैं। मैं जानती हूँ कि उनकी कृपा ने हमें आच्छन्न कर रखा है। हमारी गृहस्थी में जो उन्नति हुई है, वह भी बुआ के ही आशीर्वाद से हुई है। बुआ के चरणों में प्रार्थना करती हूँ कि परलोक में भी मुझे उन्हीं के चरणों में आश्रय मिले।*

❖ (क्रमशः) ❖

२. बाद में ६ जुलाई १९८५ को लेखिका की मृत्यु हो गयी।

* उद्बोधन, वर्ष ९८, अंक १०, कार्तिक १४०३, पृ. ५८३-८५

दोहा-द्वादशी

डॉ. भानुदत्त त्रिपाठी 'मधुरेश'

अपना मन मत मार रे, मन को कर बलवान।
मन से ही संसार है, मन से ही भगवान।।

'मैं'-'मेरा' में मर रहा, यह सारा संसार।
अमर वही, निर्भय वही, जो 'मैं' को दे मार।।

योगी जन ही जानते, या कि जानते सन्त।
नित्य एक प्रभु-प्रेम है, जिसका आदि न अन्त।।

तजा सत्य-सद्धर्म को, तजे न्याय-ईमान।
फिर भी मानव मानता, अपने को महिमान।।

कहा फूल ने शूल से - परम सत्य मत भूल।
जीवन दिन दो-चार का, अन्त सभी का धूल।।

ऊँच हुआ, तो क्या हुआ, यदि करनी हो नीच।
नीच हुआ, तो क्या हुआ, कमल उगाता कीच।।

जिया न जगमग दीप बन, किया न पर उपकार।
अजा-गलस्तन-तुल्य जन, भू का केवल भार।।

बिना अमरता-रस पिये, बिना किये संघर्ष।
मानव पा सकता नहीं, जीवन का उत्कर्ष।।

वह ही सच्चा वीर है, वह ही सच्चा धीर।
जो उठता है सूर्य-सम, घोर तिमिर को चीर।।

यहीं धरा पर ही धरा, रह जायेगा सर्व।
तन-यौवन, धन-धाम पर, क्यों करता नर गर्व?

राग-द्वेष जिसमें नहीं, ऐसा मनुज महान्।
खिलता है संसार में, जल पर कमल-समान।।

जिसने प्रभु को दे दिया, जीवनदाय समस्त।
इस नश्वर संसार में, वही रहेगा मस्त।।

मानव-वाटिका के सुरभित पुष्प

डॉ. शरद् चन्द्र पेंढारकर

१२१. बिनु सत्संग कुमति नहिं छूटे

सिरड़ी के सन्त साईं बाबा भोजन के बाद ईंट को सिरहाने रखकर लेटे-लेटे लोगों के साथ बातें कर रहे थे, तभी सहसा सामने से पायलों की रुनझुन और वाद्यों की ध्वनि पास आती सुनाई दी। सबने सामने देखा कि तो उन्हें हावभाव के साथ नाचती एक नर्तकी और उसके दो संगी आते दिखाई दिये। पास आकर नर्तकी और भी तीव्र गति से नाचने लगी। बाबा उठकर उसके पास गये और बोले, "बस करो माँ, नाचते-नाचते तुम थक गई होगी।" यह कहकर बाबा उसके पैर दबाने लगे। नर्तकी के लिये यह अनपेक्षित था। उसने पैर पीछे हटा लिये और स्वयं ही बाबा के चरणों में गिर पड़ी।

इतने में पीछे से आवाज आई, "बचाओ, बचाओ। साँप ने डस लिया।" लोगों ने उधर जाकर देखा, तो उन्हें एक खम्भे के पीछे शिरडी के ही विश्वनाथ और विनायक नामक दो युवक दिखाई दिये, जिनके पैरों से एक साँप लिपटा हुआ था। बाबा भी वहाँ पहुँच गये। उन्हें देख दोनों ने कहा, "बाबा, हम आपसे ईर्ष्या-द्वेष करते थे; इसलिये इस नर्तकी को पैसे देकर लाये थे कि आपके इस पर मोहित होने पर आपको रस्सी से बाँधकर सड़क पर घुमाएँगे, मगर न जाने कहाँ से यह साँप आया और हमें जकड़ लिया। बाबा ने हाथ लगाकर कहा, "साँप कहाँ है? तुम्हारे पैरों में तो रस्सी बँधी हुई है।" लोग यह देखकर दंग रह गये कि बाबा के स्पर्श करते ही साँप रस्सी हो गया था। दोनों युवकों को पछतावा हुआ कि वे व्यर्थ ही एक पहुँचे हुए सन्त का अपमान करने जा रहे थे। उन्होंने बाबा के पैरों में गिरकर रोते हुए क्षमा माँगी और उनके भक्त बनकर लोगों की सेवा करने लगे।

ईर्ष्या एक मनोभाव है। ईर्ष्या का अर्थ है असन्तोष। यह असन्तोष हमें दूसरों को हानि पहुँचाने की ओर प्रवृत्त करता है। जो हमसे सुन्दर, बुद्धिमान, बलिष्ठ या धनाढ्य है अथवा जिसे संसार में हमसे मान-सम्मान तथा प्रतिष्ठा प्राप्त है, उसे देखकर हमारे मन में ईर्ष्या का भाव प्रकट होता है। यह ईर्ष्या ही मनुष्य के मन में दूसरों का अहित करने की कामना जाग्रत करती है। इसके फलस्वरूप व्यक्ति जीवन में बहुत कष्ट उठाता है, किन्तु अन्त में साधु-सज्जन पुरुषों के संसर्ग में आने से उसमें सत्प्रवृत्ति आ जाती है। तब उसे अपनी भूल का बोध होता है और वह पश्चाताप करके शुद्ध हो जाता है।

१२२. सद्गुरु मारग दिखाइया

बनारस विश्वविद्यालय से बी. ए. की परीक्षा उत्तीर्ण करके के बाद दो लड़के अपने घर लौटे। दोनों जुड़वे भाई थे। उनकी माता ने उनसे कहा, "तुमने बौद्धिक ज्ञान तो जरूर प्राप्त कर लिया है, लेकिन तुम्हारा व्यावहारिक ज्ञान तो अभी शून्य ही है। इसलिये तुम लोग सन्त दादूदयाल के पास जाओ और उनसे चरित्रवान बनने की शिक्षा ग्रहण करो। यही शिक्षा तुम्हें जीवन-मार्ग में सफलता दिलायेगी।"

उन दिनों सन्त दादू दयाल जयपुर में निवास करते थे। दोनों युवक जब माता द्वारा बताये पते पर पहुँचे, तो दूर से उन्हें एक गंजा व्यक्ति बैठा हुआ दिखाई दिया। लड़के उच्छृंखल स्वभाव के थे। उनमें से एक ने पास ही पड़े टूटे हुए मटके का एक टुकड़ा उठाकर उस व्यक्ति के सिर पर निशाना साधकर फेंक दिया। उस व्यक्ति ने जब पीछे मुड़कर देखा, तो दोनों युवक चुपचाप खड़े दिखाई दिये। पास आने पर वह व्यक्ति बोला, "कहो भाई, कैसे आये हो?"

उनमें से एक ने पूछा, "दादू साहब कहाँ रहते है?"

उस व्यक्ति ने उत्तर दिया, "वे तो आमेर में रहते हैं।" और उन्होंने एक पुर्जे पर उनका पता लिखकर दे दिया।

दोनों आमेर की ओर रवाना हो गये। वह व्यक्ति वास्तव में सन्त दादू दयाल ही थे। वे छोटे रास्ते से जाकर लड़कों से पहले ही आमेर पहुँच गये। निर्दिष्ट पते पर पहुँचकर लड़कों ने जब दादू दयाल को देखा, तो वे झेंप गये और उनके चरणों में गिरकर क्षमा माँगने लगे। उनके आने का उद्देश्य सुनकर सन्त दादू ने कहा, "इसमें क्षमा माँगने की क्या जरूरत? मटका खरीदते समय क्या ठोक-बजाकर जाँच नहीं की जाती? तुमने भी मेरी परीक्षा ली कि मैं शिक्षा देने के योग्य हूँ या नहीं।" लड़कों को वहाँ और रुकने की जरूरत नहीं हुई, क्योंकि उन्हें शिक्षा मिल चुकी थी – अपने से बड़ों का कभी उपहास तथा अनादर नहीं करना चाहिये।

कोई व्यक्ति अपने साथ चाहे जैसा भी बर्ताव क्यों न करे, आदमी को हमेशा सहनशीलता, धैर्य और क्षमाशीलता का ही परिचय देना चाहिये।

क्रोध पर विजय (४)

स्वामी बुधानन्द

(हमें अपने जीवन में प्राय: ही अपने तथा दूसरों के क्रोध का सामना करना पड़ता है, परन्तु हम नहीं जानते कि क्रोध क्या है, इसकी उत्पत्ति कैसे और कहाँ होती है, और उस पर कैसे नियंत्रण किया जाय। इसी विषय को लेकर रामकृष्ण संघ के एक विद्वान् संन्यासी स्वामी बुधानन्द जी ने १९८२ ई. में रामकृष्ण मिशन के दिल्ली केन्द्र में अंग्रेजी में एक व्याख्यान-माला प्रस्तुत की थी। बाद में ये व्याख्यान मद्रास मठ के आंग्ल मासिक 'वेदान्त-केसरी' में धारावाहिक रूप से और अन्तत: एक पुस्तिका के रूप में प्रकाशित हुए। आधुनिक जीवन में उनकी उपादेयता को देखते हुए 'विवेक-ज्योति' में हम उसका हिन्दी अनुवाद क्रमश: प्रस्तुत कर रहे हैं। – सं.)

क्रोध के संगी तत्त्वों पर विजय

पतंजलि इन सूक्ष्म संस्कारों पर नियंत्रण पाने का उपाय बताते हैं – ''इन सूक्ष्म संस्कारों को उनके मूल कारण में विलीन करने के साधन द्वारा नाश करना पड़ता है।'' (२/१०)

स्वामीजी इस सूत्र की व्याख्या करते हुए कहते हैं – ''संस्कार सूक्ष्म स्मृतियों को कहते हैं, जो बाद में स्वयं को स्थूल रूपों में प्रकट करती हैं। इस सूक्ष्म संस्कारों को नष्ट करने का क्या उपाय है? कार्य का कारण में लय करना। चित्त या मन-रूप कार्य जब अपने अस्मिता या अहंकार रूप कारण में विलीन हो जाता है, तभी चित्त के साथ ही ये सारे संस्कार भी नष्ट हो जाते हैं। केवल ध्यान से ये नष्ट नहीं हो सकते।''

क्रोध का उदय एक चित्तवृत्ति या उसके भी पहले एक विचार-बुद्बुद के रूप में होता है। यह विचार-बुद्बुद अविद्या या अज्ञान से उत्पन्न होता है। पतंजलि की शिक्षा है – ''अनित्य, अपवित्र, दु:खकर और आत्मा से भिन्न पदार्थ में (क्रमश:) नित्य, पवित्र, सुखकर तथा आत्मा की प्रतीति 'अविद्या' है।'' (२/५)

अविद्या सर्वदा ही अस्मिता, राग, द्वेष तथा अभिनिवेश से जुड़ी रहती है – ये सभी योग में बाधक हैं और इनमें से प्रत्येक का क्रोध के उदय में काफी योगदान होता है। अज्ञान में ही उत्पन्न होकर उसी में निवास करनेवाले अविद्या के इन चार सहयोगियों को समझना आवश्यक है। द्रष्टा (आत्मा) का देखने के यंत्रों (मन तथा इन्द्रियों) के साथ तादात्म्य को अस्मिता या अहंकार कहते हैं। आनन्द प्रदान करनेवाली आसक्ति को राग कहते हैं। जो कुछ भी पीड़ा या कष्ट देता है, उसे द्वेष कहते हैं। जीवन के प्रति मोह को अभिनिवेश कहते हैं; और जो कुछ भी इस मोह के मार्ग में रुकावट बनाता है, उस पर क्रोध आता है। जब हम स्थूल और संसारी प्रकार का जीवन बिताते हैं, तो (हमारे जीवन में) अविद्या तथा उसके हानिकर संगी, और भी दृढ़तापूर्वक जम जाते हैं। तब हम क्रोध को नियंत्रित नहीं कर सकते और क्रोध के दास हो जाते हैं। परन्तु हममें से प्रत्येक के लिये विवेक या विचार का अभ्यास करना सम्भव है, जिसके द्वारा इन सभी के प्रभावों को दुर्बल किया जा सकता है और अन्तत: **ईश्वर की कृपा से अविद्या का नाश किया जा सकता है।** जो लोग अस्मिता, राग, द्वेष तथा अभिनिवेश रूपी अविद्या की शक्तियों को दुर्बल करने हेतु विवेक-विचार का अभ्यास करते हुए, क्रोध पर विजय प्राप्त करना चाहते हैं, उन्हें इस सलाह को अपनाना चाहिये कि कामनाओं को अधिक देर तक चित्त में टिकने न दें। व्यक्ति को अपने जीवन की काल्पनिक परिस्थितियों में इस्तेमाल करने के लिये अपने मन में इस प्रकार का जीवन्त क्रोध-बम नहीं ढोते रहना चाहिये – ''यदि उसने ऐसा किया या कहा, तो आज मैं उसे मार ही डालूँगा। पिछली बार मैंने उसे माफ कर दिया था, परन्तु इस बार तो मैं उसे बिल्कुल नहीं छोड़ूँगा!'' क्रोधित होने का ऐसा स्वभाव स्वास्थ्य के लिये भी बुरा है और यह हमारे चित्त को पागलपन के हद तक बिगाड़ सकता है।

दूसरों के क्रोध का सामना

इसका दूसरा पक्ष यह है कि हम दूसरों के क्रोध का कैसे सामना करें। सज्जन तथा उदार होने के बावजूद जब हमें दूसरों के तिरस्कार तथा क्रोध का शिकार होना पड़े, तब हम क्या करें? कुछ परिस्थितियाँ तो पतंजलि द्वारा सुझाई गयी 'शाब्दिक-भ्रान्ति' के समान ही प्रतीत होती हैं और जरा भी भयंकर नहीं होतीं, बल्कि विचार करने पर हास्यास्पद भी लग सकती हैं। एक बार एक समाचार-पत्र में भारत सरकार के एक मंत्री के विषय में एक अत्यन्त अप्रिय, निन्दात्मक तथा अपमानजनक टिप्पणियों से युक्त एक सम्पादकीय लेख प्रकाशित हुआ। कुछ सांसदों ने इस मुद्दे को उठाकर मंत्रीजी को भड़काना चाहा। परन्तु वे जरा भी उत्तेजित नहीं हुए। उन्होंने इस पूरी घटना को ही यह कहते हुए खारिज कर दिया – ''यदि जूता मनुष्य को काटे, तो क्या मनुष्य भी जूते को काटता है!'' इसी तरह की 'शाब्दिक-भ्रान्ति' पर कोई कम सन्तुलित व्यक्ति शायद आग-बबूला हो उठता। यदि हम अपने अहंभाव को हानिकर सीमा तक पहुँचने से रोक सकें, तो बड़ी आसानी से हर चीज के रोचक तथा निरर्थक पहलू को भी देख सकेंगे और इस प्रकार स्वयं को अपने

क्रोध के उतार-चढ़ाव के दास बनकर हास्यास्पद स्थिति में पहुँचने से बचा सकेंगे। मानवीय तथा सामाजिक सम्बन्धों में क्रोध का कम और हास-परिहास का अधिक उपयोग होना चाहिये। जीवन में कभी-कभी हमें विस्फोटक परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है। मान लीजिये मैं किसी को अपने घर में आग लगाते देखूँ, तो मैं तत्काल उसके पीछे दौड़कर उसे पकड़कर पीटने नहीं लगूँगा, बल्कि पहले तो मैं आग को बुझाने को दौड़ूँगा। तो फिर उस आदमी को पकड़ने का क्या हुआ? हाँ, वह भी बहुत जरूरी है, विशेषकर जब मुझमें क्रोध का भयंकर विस्फोट हुआ हो या हो रहा हो। परन्तु जिस व्यक्ति को पकड़ना है, वह स्वयं मैं ही हूँ। उस समय हमें पतंजलि के इस स्वर्णिम उपाय को अपनाना होगा, जिसकी व्याख्या करते हुए स्वामी विवेकानन्द कहते हैं –

"उदाहरणार्थ, जब मन में क्रोध की एक बड़ी तरंग आती है, तब उसे कैसे वश में लाया जाय? – उसके विपरीत तरंग उठाकर। उस समय प्रेम की बात मन में लाओ। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि एक माँ किसी व्यक्ति पर खूब नाराज हो जाती है, तभी उसका बच्चा वहाँ आ जाता है और वह उसे गोद में उठाकर चूम लेती है; इससे उसके मन में बच्चे के प्रति प्रेमरूप तरंग उठने लगती है।... प्रेम क्रोध का विपरीत भाव है।

एक आश्वासन

हममें से बहुत-से लोग आन्तरिक रूप से असुरक्षित जीवन बिताते हैं। हम नहीं जानते कि हम किन तनावों के चलते अपने जीवन को अस्त-व्यस्त कर डालते हैं। हममें से बहुत-से लोग वस्तुत: नहीं जानते कि हमारे, दबकर एकत्र हो रहे क्रोध में विस्फोट होगा और हमारे तथा दूसरों के भी सुख की सम्भावनाओं को चकनाचूर कर डालेगा। जब तक हमारे आन्तरिक जीवन से यह अनिश्चितता दूर नहीं हो जाती, तब तक हममें विनाशकारी क्रोध की सम्भावना बनी रहती है। पतंजलि ने सर्वमान्य आध्यात्मिक परम्पराओं पर आधारित कुछ ऐसे निर्देश दिये हैं, जिनके आधार पर एक दिव्य जीवन बिताने के लिये एक सुनिश्चित स्वभाव विकसित किया जा सकता है और इस प्रकार इस अनिश्चितता से छुटकारा पाया जा सकता है। उनमें से प्रथम दो – 'यम' तथा 'नियम' विशेष रूप से प्रासंगिक हैं। अहिंसा, सत्य बोलना, चोरी न करना, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह इन्हें 'यम' कहते हैं। आन्तरिक तथा बाह्य शुद्धि, सन्तोष, तप, स्वाध्याय तथा ईश्वर की उपासना – ये 'नियम' कहलाते हैं।

जो लोग इन सार्वभौमिक 'महान् व्रतों' का पालन करते हैं, वे इस विषय में निश्चिन्त हो सकते हैं कि वे पतंजलि की शिक्षाओं पर चलकर वे क्रोध से पूर्णतया मुक्त हो जायेंगे।

५. उत्तेजनाओं से करुणा की ओर

'अवदान-कल्पलता' ग्रन्थ में महाकवि क्षेमेन्द्र भगवान बुद्ध की स्तुति करते हुए कहते हैं –

"मैं उन्हें प्रणाम करता हूँ, जो कठिनाइयों में पड़े लोगों के मार्गदर्शक हैं, जो भवरोग के चिकित्सक हैं और जिनका हृदय समस्त प्राणियों के प्रति करुणा से ओतप्रोत है।"

रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने बुद्धदेव का आवाहन करते हुए उनसे प्रार्थना की है कि वे आकर रुग्ण मानवता को अपना आरोग्य-स्पर्श प्रदान करें –

क्रन्दनमय है विश्व-हृदय, हो ताप-दहन से दीप्त।
विषमय विषय-विकार-प्रदूषित, जीर्ण-खिन्न-अतृप्त ।।
द्वेष-रक्त का तिलक चमकता, मस्तक पर देशों के।
अपना मंगल-शंख लिये आओ, निज दक्षिण कर में ।।
आओ शुभ संगीत लिये निज, आओ हे निर्द्वन्द।
आओ अपना राग-ताल ले, अपना सुन्दर छन्द ।।
परम शान्त हे, नित्य मुक्त हे; हे अनन्त, हे पुण्य,
हे करुणाघन, करो धरणि को, इस कलंक से शून्य ।।

विभिन्न कालों का प्रतिनिधित्व करनेवाले इन दो कवियों की उपरोक्त पंक्तियों में हम देखते हैं कि भगवान बुद्ध को करुणा, प्रेम, ज्ञान, समदृष्टि, अहिंसा, समता तथा शान्ति का प्रतीक माना जाता रहा है। तथागत बुद्ध का एक चित्र तक एक कमरे के वातावरण को उदात्त बना देता है। असीम पूर्णता के प्रतीक भगवान बुद्ध एक ऐतिहासिक व्यक्ति थे; और उनके जीवन तथा सन्देश ने मानवीय सभ्यता एवं संस्कृति को स्थायी रूप से प्रभावित किया है।

बुद्धदेव का जन्म ईसा के ५६३ वर्ष पूर्व हुआ था और वे ८० वर्ष की आयु तक जीवित रहे। अपने प्रचार-काल में भगवान बुद्ध की जो जीवन-धारा रही और उनके जो उपदेश हुए, वे लिपिबद्ध रूप में उपलब्ध हैं। हम क्रोध पर विजय पाने के लिये उनके जीवन तथा उपदेशों से प्रेरणा, दिशा-निर्देश तथा अन्तर्दृष्टि प्राप्त कर सकते हैं।

ऐसी बात नहीं कि बुद्धदेव को कठिन परिस्थितियों और कष्टदायी लोगों का सामना न करना पड़ा हो। यदि हम उनके चरित्र का अध्ययन करें कि वे दुनिया में किस प्रकार चले-फिरे, किस प्रकार लोगों से मिले-जुले, किस प्रकार अपमानों, चुनौतियों, स्तुतियों तथा विवादों का सामना किया – तो यह अध्ययन हमें क्रोध पर विजय प्राप्त करना सिखा सकता है। वे शान्ति की प्रतिमूर्ति थे। सभी जीवधारियों के प्रति उनके मन में सद्भाव तथा करुणा के सिवा अन्य कोई भी भाव न था। धम्मपद के अपने अंग्रेजी अनुवाद की भूमिका में डॉ. राधाकृष्णन उनके इन गुणों को रेखांकित करते हैं –

"बुद्धदेव के जीवन में कभी ऐसा अवसर नहीं आया, जब वे क्रोध से अभिभूत हुए हों; कोई भी ऐसी घटना नहीं

हुई, जब उनके होठों से कठोर शब्द निकले हों। हर तरह के मनुष्य के लिये उनमें असीम सहनशीलता थी। वे जगत् को दुष्टता नहीं अपितु अज्ञानता से परिपूर्ण मानते थे; अराजकतापूर्ण नहीं, अपितु असन्तोषजनक मानते थे। विरोध का सामना उन्होंने शान्ति तथा विश्वास के साथ किया। उनके मन में कोई स्नायविक उत्तेजना या आक्रोश जैसा कुछ नहीं था। उनका आचरण सौजन्यता तथा सद्भाव की एक पूर्ण अभिव्यक्ति थी, जिसमें परिहास का पुट भी विद्यमान था।''

बुद्धदेव के जीवन की कुछ घटनाएँ उनके चरित्र के इन गुणों को प्रकट करती हैं। वे आध्यात्मिक जीवन बिताने के लिये मूल्यवान तथा व्यावहारिक पाठ पढ़ाती हैं।

भरद्वाज एक धनाढ्य ब्राह्मण किसान थे। वे फसल-कटाई का देवोत्सव मना रहे थे। उसी समय बुद्ध अपना भिक्षा-पात्र लिये भोजन की भिक्षा माँगने वहाँ आ पहुँचे। उनसे परिचित कुछ लोगों ने उनके प्रति सम्मान व्यक्त किया, परन्तु भरद्वाज एक स्वस्थ-सबल व्यक्ति को भिक्षा माँगते देखकर भड़क उठे और क्रोधपूर्वक बोले – ''धिक्कार है तुम्हें, भिक्षा माँगने के स्थान पर तुम्हारे लिये यही अधिक उपयुक्त होता कि कहीं जाकर काम करते। मैं हल चलाता हूँ और बीज बोता हूँ; मैं कठोर परिश्रम करता हूँ और जुताई-बुवाई करके खाता हूँ। यदि तुम भी ऐसा ही करो, तो तुम्हारे पास कुछ खाने को होगा और तुम्हें भोजन के लिये भिक्षा नहीं माँगनी पड़ेगी।''

इस पर जरा भी क्षुब्ध हुए बिना ही बुद्ध ने अपने मन की शान्ति को बनाये हुए उत्तर दिया – ''हे ब्राह्मण, मैं भी जोतता हूँ, बोता हूँ और जुताई-बुवाई करके ही खाता हूँ।''

ब्राह्मण विस्मित होकर बोले – ''तो क्या तुम किसान हो? तुम्हारे बैल कहाँ हैं? बीज कहाँ हैं? हल कहाँ है?''

बुद्ध बोले – ''मैं विश्वास का बीज बोता हूँ, सत्कर्म रूपी वर्षा उसे अंकुरित करती है; विवेक तथा लज्जा मेरे हल हैं, मेरा मन लगाम है, मैं धर्म का हल थामे रहता हूँ, सच्चाई मेरा हाँकने का डण्डा है और परिश्रम मेरे बैल हैं, भ्रान्ति के खर-पतवार को नष्ट करने के लिये खेत में हल चलाया जाता है, इसमें फसल निर्वाण के अमर-फल के रूप में होती है और इस प्रकार सारे दु:खों का अन्त हो जाता है।''

तब ब्राह्मण ने सोने के कटोरे में दूध-भात परोसा और यह कहते हुए बुद्ध को अर्पित किया – ''हे मानव-जाति के आचार्य, दूध-भात स्वीकार करें, क्योंकि माननीय गौतम एक ऐसा खेत जोतते हैं, जिसमें अमरत्व की फसल होती है।''

भगवान बुद्ध ने, अपने अत्यन्त सन्तुलित मस्तिष्क तथा मधुर आचरण के द्वारा, इस उत्तेजना तथा अपमान से परिपूर्ण परिस्थिति को, एक आक्रामक तथा अहंकारी गृहस्थ की आध्यात्मिक शिक्षा-रूपी एक उन्नयनकारक अवसर में परिणत कर लिया। बुद्ध पर बारम्बार अपमान तथा निन्दा की वर्षा की गयी, परन्तु उनके विशाल हृदय तथा महान् मेधा ने उसी परिस्थिति को शिक्षा के एक अवसर में परिणत कर लिया और इस प्रकार न केवल उस व्यक्ति विशेष, अपितु (उसी के माध्यम से) भविष्य की मानवता को अपने सर्वश्रेष्ठ आध्यात्मिक उपहार अर्पित किये। ऐसा प्रतीत होता है कि उनका याचक-रूप श्रमण, दाता-रूप श्रमण में परिणत हो जाता था।

एक अन्य दिन भी भिक्षा माँगने गये और एक गृहस्थ की कटूक्तियों के द्वारा अपमानित हुए। उत्तर में बुद्ध बोले – ''मित्र, यदि कोई गृहस्थ किसी भिक्षुक के समक्ष कोई भोज्य पदार्थ रखता है, परन्तु भिक्षुक उसे लेने से इनकार कर देता है, तो वह भोजन किसका होगा?'' उस व्यक्ति ने उत्तर दिया – ''निश्चित रूप से उस गृहस्थ का ही होगा।'' बुद्ध बोले – ''तो फिर मैं तुम्हारी गालियों तथा दुर्भाव को अस्वीकार करता हूँ। यह पुन: तुम्हारा ही हुआ, ठीक है न! परन्तु मैं पूर्व की अपेक्षा अधिक अभावग्रस्त होकर जा रहा हूँ, क्योंकि मैंने एक मित्र खो दिया है।''

खरी-खोटी सुनकर भी बुद्ध न तो नाराज हुए और न ही आचार्य के रूप में अपने कर्तव्य को भूले, क्योंकि वे मानव-जाति के प्रबोधक थे। उन्होंने एक बार अपने विषय में स्वयं ही कहा था कि उन्होंने धर्मोपदेशक के समान अपनी मुट्ठी को बँधी न रखकर स्पष्ट शब्दों में सम्मानपूर्वक उपदेश दिये हैं।

तथागत जब श्रावस्ती के जेतवन में निवास कर रहे थे, तो एक दिन वे अपने भिक्षा-पात्र के साथ भोजन की भिक्षा माँगने निकले। वे एक ब्राह्मण पुरोहित के घर पहुँचे, जिसकी यज्ञवेदी पर अग्नि प्रज्वलित थी। पुरोहित ने चिल्लाकर कहा – ''वहीं ठहर, ओ मुण्डी, वही ठहर, ओ दुष्ट श्रमण, तू चाण्डाल है।'' बुद्ध ने पूछा – ''चाण्डाल कौन है?'' और अपने को अपमानित करनेवाले की समझ को स्पष्ट करने हेतु अपने प्रश्न का स्वयं ही उत्तर दिया – ''चाण्डाल वह व्यक्ति है, जो क्रोध करता है, जो घृणा करता है, जो दुष्ट है, जो मिथ्याचारी है, जो गलतियाँ करता है और जो अहंकार से परिपूर्ण है। जो कोई दूसरों को भड़काता है, बुरी इच्छाएँ रखता है, ईर्ष्यालु है, लोभी है, दुष्ट है, निर्लज्ज है और बुरे कार्यों से नहीं डरता – उसी को चाण्डाल समझना चाहिये। कोई जन्म से चाण्डाल नहीं होता और न कोई जन्म से ब्राह्मण ही हो जाता है। व्यक्ति अपने कर्मों से चाण्डाल बन जाता है और अपने कर्मों के अनुसार ब्राह्मण बन जाता है।''

क्रोध का सामना करते समय बुद्धदेव सर्वदा अपनी बुद्धि की प्रशान्ति, स्वभाव की शान्तता, हृदय की उदारता, परम सौजन्यता और सौम्य दृढ़ता का परिचय देते थे। वे सर्वदा ही क्रोध से तिलमिला रहे लोगों की चिकित्सा करते रहे।

उनका ऐसा मानना था कि क्रोधी व्यक्ति के पास भी कोई ऐसा कारण होगा, जिस पर सम्मानपूर्वक विचार किया जाना चाहिये। उनकी यह विराट्-मनस्कता तथा उदार दृष्टिकोण निम्नलिखित उदाहरण से स्पष्ट हो जाता है –

एक बार बुद्ध एक सार्वजनिक हॉल में प्रविष्ट हुए और देखा कि उनके कुछ अपने शिष्य आपस में उस ब्राह्मण के विषय में चर्चा कर रहे हैं, जो थोड़ी ही देर पूर्व बुद्ध पर अधर्मी होने का आरोप लगा रहा था और उनके द्वारा स्थापित संन्यासी-संघ के दोष दिखा रहा था।

बुद्ध बोले – "भाइयो, यदि अन्य लोग मेरे, या मेरे धर्म, या मेरे संघ के विरुद्ध बोलते हैं, तो इससे तुम लोगों को उन पर क्रोधित, असन्तुष्ट या नाराज होने की कोई आवश्यकता नहीं। यदि तुमने ऐसा किया, तो इससे तुम न केवल अपनी आध्यात्मिक हानि का जोखिम उठाओगे, अपितु तुम इस बात पर भी ठीक विचार नहीं कर सकोगे कि वे लोग जो कुछ कह रहे हैं, वह सत्य है या असत्य।"

यह कैसी प्रबुद्ध उक्ति है और २५०० वर्षों पूर्व – उन दिनों जितनी प्रासंगिक थी, उतनी ही आज भी है।

शान्ति के दूत

बुद्ध ने अपनी बुद्धि तथा विवेक की महान् शक्ति को इतनी कुशलतापूर्वक काम में लगाया कि क्रोध गम्भीर समझे जानेवाले कारण भी क्षण भर में ही उड़न-छू हो गये।

रोहिणी नदी के जल को लेकर शाक्य तथा कोलीय राज्यों के बीच विवाद उत्पन्न हो गया था। उस वर्ष सूखा पड़ जाने के कारण नदी का जल उसके दोनों तटों पर स्थित खेतों की सिंचाई के लिये पर्याप्त नहीं था। दोनों ओर के राजाओं तथा सैनिकों को युद्ध के लिये तैयार देखकर तथागत ने पूछा कि उनके बीच झगड़े का क्या कारण है ! राजाओं ने कहा कि निश्चित रूप से नहीं जानते कि उनके बीच विवाद का क्या कारण है। उन लोगों ने अपने सेनापतियों से पूछा, परन्तु उन्हें भी शंका थी, अत: उन्होंने मंत्री से पूछा। इसी प्रकार यह प्रश्न आगे बढ़ता गया और अन्त में किसानों ने बताया कि संघर्ष का कारण सिंचाई के लिये जल का अभाव है। दोनों ओर की शिकायतें सुनने के बाद भगवान बुद्ध बोले – "मुझे लगता है कि तुम्हारी थोड़ी-सी जनता के लिये ही इस तटबन्ध का कुछ महत्त्व है; तुम्हारी जनता के लाभ के अतिरिक्त क्या इसका कुछ मूलभूत महत्त्व भी है?"

उत्तर मिला – "इसका कोई भी मूलभूत महत्त्व नहीं है?" बुद्ध बोले – "जब तुम लोगों में युद्ध छिड़ेगा, तब क्या यह निश्चित नहीं है कि तुम्हारे बहुत-से लोग मारे जायेंगे और हे राजाओ, तुम लोगों के स्वयं के जीवन को भी खोने की सम्भावना है?"

वे बोले – "निश्चय ही बहुत-से लोग मारे जायेंगे और हमारा स्वयं का जीवन भी संकट में पड़ जायेगा।"

बुद्ध ने कहा – "परन्तु मिट्टी की एक ढेरी की अपेक्षा क्या रक्तपात का कोई मूलभूत महत्त्व है?"

राजा बोले – "नहीं, मनुष्यों का जीवन और सर्वोपरि राजाओं का जीवन अनमोल है।"

निष्कर्ष के रूप में भगवान बुद्ध ने कहा – "तो क्या तुम लोग एक ऐसी चीज के लिये जिसका कोई मूलभूत महत्त्व नहीं है, एक अनमोल चीज की बलि चढ़ाने जा रहे हो?"

दोनों राजाओं का क्रोध शान्त हो गया और उन्होंने आपस में एक सद्भावपूर्ण समझौता कर लिया।

संसार में हम अक्सर देखते हैं कि निरर्थक वस्तुओं के लिये अमूल्य मानव-जीवन की बलि चढ़ाई जाती है, ऐसे मानव-जीवन की जिसमें महान् अन्तर्निहित मूल्य निहित है। पुरुष और नारी अन्धे क्रोध के वशीभूत होकर अपनी बुद्धि तथा विवेक की शक्ति को खो बैठते हैं। और ऐसी मन:स्थिति में जो कुछ किया जाता है, वह निश्चित रूप से गलत तथा हानिकर होता है।

अग्नि-उपदेश

बुद्ध के जीवन-काल में, उरुवेला में जटिल नामक एक जटाजूटधारी तपस्वी ब्राह्मणों का सम्प्रदाय था, जो अग्नि की उपासना करते थे। कस्सप उनके प्रमुख थे। वे पूरे भारत में प्रसिद्ध थे और पृथ्वी के परम ज्ञानियों में एक तथा धर्म पर एक अधिकारी व्यक्ति के रूप में सम्मानित किये जाते थे।

एक बार नादी तथा गया के जटिलों को, कठोर तपस्या तथा अग्निपूजा करने के बाद अपने पास आया देखकर तथागत बुद्ध ने उन्हें अग्नि का उपदेश देते हुए कहा –

"हे जटिलो, सब कुछ जल रहा है। नेत्र जल रहे हैं, सभी इन्द्रियाँ जल रही हैं, विचार जल रहे हैं। यह सब कुछ कामना की अग्नि में जल रहा है। क्रोध है, अज्ञान है, घृणा है और जब तक अग्नि को भक्षण करने के लिये कोई ज्वलनशील पदार्थ प्राप्त होता है, तब तक यह जलती रहेगी और तब तक जन्म तथा मृत्यु, जरा, दु:ख, शोक, पीड़ा, निराशा तथा कष्ट होते रहेंगे। इस बात पर विचार करके धर्म का साधक चार आर्य सत्यों को देखेगा और पवित्रता के अष्टांग मार्ग पर चलेगा। उसकी आँखें सजग हो जायेंगी, वह कामनाओं को त्याग देगा और मुक्त हो जायेगा। उसकी स्वार्थपरता चली जायेगी और वह निर्वाण की अवस्था को पा लेगा।"

इन शब्दों पर ध्यान दीजिये – जब तक आग को भक्षण करने के लिये कोई ज्वलनशील वस्तु प्राप्त होती रहेगी, तब तक वह जलती रहेगी।

❖ (क्रमश:) ❖
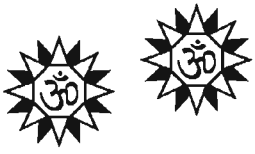
पातञ्जल-योगसूत्र-व्याख्या (१०)
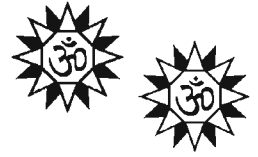
स्वामी प्रेमेशानन्द

(माँ श्री सारदा देवी के वरिष्ठ शिष्य स्वामी प्रेमेशानन्द जी ने १९६२ ई. के फरवरी माह में अपनी अस्वस्थता के दौरान वाराणसी में अपने सेवक को पातञ्जल योगसूत्र पढ़ाया था। इनके पाठों को सेवक एक नोटबुक में लिख लेते थे। बाद में सेवक – स्वामी सुहितानन्द जी ने उन पाठों को सुसम्पादित कर एक बँगला ग्रन्थ के रूप में प्रकाशित कराया। 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशनार्थ पातञ्जल योग जैसे गूढ़ विषय पर इस सहज-सरल व्याख्या का हिन्दी अनुवाद रायपुर आश्रम के स्वामी प्रपत्त्यानन्द ने किया है। – सं.)

स्वस्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः ।।५४।।

जब इन्द्रियाँ अपने-अपने विषयों का त्याग कर चित्त का स्वरूप ग्रहण करती हैं, यानि चित्तस्वरूपाकार हो जाती हैं, तब उसे प्रत्याहार कहते हैं।

ततः परमा वश्यतेन्द्रियाणाम् ।।५५ ।।

प्रत्याहार से इन्द्रियाँ सम्पूर्ण रूप से वशीभूत हो जाती हैं।

व्याख्या – जब मन किसी एक विषय के चिन्तन में निरत रहता है, तब उसे उस विषय से खींचकर किसी दूसरे विषय में संलग्न करने, नियुक्त करने को प्रत्याहार कहते हैं। सांसारिक कार्यों को करते समय हमलोग सर्वदा ही मन को खींचकर रखते हैं। जैसे किसी सज्जन के घर उनका लड़का बीमार है। वे सज्जन अध्यापन या किरानीगिरी (क्लर्क) करके अपनी जीविका चलाते हैं। विद्यालय या कार्यालय में काम करते समय उन्हें घर की चिन्ता से मन को खींचकर उसे कर्तव्य-कर्म में लगाना पड़ता है। प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में 'प्रत्याहार' का लक्षण सदा देखा जाता है। इस स्वाभाविक शक्ति को आत्मज्ञान के पथ पर संलग्न करने, आत्मज्ञान की दिशा में संचालित करने से ही सफलता की प्राप्ति हो सकती है। जो लोग मन को ब्रह्म, आत्मा या ईश्वर-चिन्तन में, स्वेच्छानुसार जब चाहें तब, जितनी देर इच्छा हो उतनी देर तक, संयुक्त रख सकते हैं, उन लोगों के लिये इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करना, जितेन्द्रिय होना तो साधारण-सी बात है, उन लोगों के लिये मुक्ति प्राप्त करना भी सहज हो जाता है।

द्वितीय अध्याय, साधनपाद समाप्त।

***

अध्याय - ३

विभूति पाद :

बाहर के सभी कार्य स्थूल शरीर के द्वारा ही सम्पन्न होते हैं, इसमें इन्द्रिय और प्राण-क्रिया ही प्रमुख हैं। भीतर के कार्य सूक्ष्म शरीर के द्वारा सम्पन्न होते हैं। जब हमलोग चिन्तन-मनन करते हैं, तब मन को सक्रिय अनुभव करते हैं। मन के पीछे बुद्धि और पूर्व संस्कार रहते हैं तथा बुद्धि के पीछे अहंकार रहता है। इन चार वस्तुओं के संयोग के बिना कोई भी चिन्तन नहीं हो सकता। अहंतत्त्व के लिये (अर्थात्, 'अहं' के भोग के लिये) सब चिन्तन होता है। बुद्धितत्त्व समस्त विचारों का नियन्त्रण करता है। पूर्व संस्कार, स्मृति या चित्त बुद्धि के सहयोगी हैं। मनस्तत्त्व उपरोक्त तीनों की सहायता से चिन्तित कार्य को सम्पन्न करता है। इसीलिये योगशास्त्र में जहाँ कहीं 'चित्त' शब्द का उल्लेख है, वहाँ हम 'मन' शब्द का प्रयोग कर रहे हैं। ऋषि इन चारों को 'चित्त' कहते हैं। स्वामी विवेकानन्दजी उसे Mind-stuff कहते हैं। अर्थात् – मन जिन सहयोगियों की मदद से कार्य करता है, वे मन के सहायक मात्र हैं।

साधना के द्वारा तन्मयतापूर्वक ईश्वर का ध्यान करने से साधक 'विभूति' प्राप्त करता है, उससे प्रकृति वशीभूत होती है और अणिमा आदि विभूतियाँ प्राप्त होती हैं। प्रकृति को वशीभूत करने, अपने अधीन करने का प्रमुख मार्ग योग है। उस योग की व्याख्या प्रथम पाद अर्थात् 'समाधि पाद' में की गई है। द्वितीय पाद अर्थात् 'साधन पाद' में योग के साधन का विवेचन हुआ है। वर्तमान पाद अर्थात् 'विभूति पाद' में साधना से विभूति-प्राप्ति होती है, इसकी समीक्षा की जायेगी।

देशबन्धश्चित्तस्य धारणा ।।१ ।।

चित्त को किसी विशेष वस्तु में संयुक्त रखने को 'धारणा' कहते हैं।

व्याख्या – प्रत्याहार की सहायता से मन को सभी विषयों से समेट कर किसी एक वस्तु में बहुत देर तक स्थिर रखने का नाम धारणा है। इसके पहले जिन साधनाओं की चर्चा हुई है, वे धारणा आदि साधना की तैयारी है। योग का आरम्भ धारणा से होता है। जैसे हम लोग श्रीरामकृष्ण की मूर्ति में मन को स्थिर करना चाहते हैं। शरीर-मन को सुदृढ़, सशक्त और सुस्थिर रखकर उनके चित्र या मूर्ति को देखते-देखते, स्मृति में ठीक उस चित्र या मूर्ति के समान ही एक छाया अंकित हो जाती है। बहुत दिनों तक प्रयास, एवं अभ्यास करते-करते जब यह छाया स्पष्ट हो जाती है, तब बोध होता है कि यह छाया श्रीरामकृष्ण की है, हम ठाकुर (श्रीरामकृष्णदेव) की मूर्ति को देख रहे हैं। इसे ही धारणा कहते हैं।

तत्र प्रत्यैकतानता ध्यानम् ।।२ ।।

वह वस्तु विषयक ज्ञान, जो हमेशा एक ही भाव में अखण्ड प्रवाहित होता है, उसे 'ध्यान' कहते हैं।

व्याख्या – इस धारणा की सहायता से बहुत देर तक स्थिर बैठकर 'मैं ठाकुर (श्रीरामकृष्ण) की मूर्ति को देख रहा हूँ' ऐसा चिन्तन कर सकने पर उसे 'ध्यान' कहते हैं।

तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः ।।३ ।।

ध्यान के द्वारा बाह्य उपाधियों का त्याग हो जाने पर एकमात्र जब अर्थ अर्थात् ध्येय वस्तु ही प्रकाशित होने लगे, तब उसे 'समाधि' कहते हैं।

व्याख्या – अन्त में जब ठाकुर की मूर्ति को हम इतना स्पष्ट देख पायेंगे कि हमारे अन्य सभी विचार, चिन्तन बन्द हो गये हैं, मैं ध्यान कर रहा हूँ, इसका भी हमें बोध नहीं हो रहा है, मानो मेरे सामने ठाकुर बैठे हुये हैं, मैं वास्तविक रूप से उनका साक्षात्कार कर रहा हूँ, इसी अवस्था का नाम 'समाधि' है।

त्रयमेकत्र संयमः ।।४ ।।

धारणा, ध्यान और समाधि, इन तीनों को क्रमशः किसी एक वस्तु पर ही एकत्र करने को, एक वस्तु में ही संलग्न करने को संयम कहते हैं।

व्याख्या – धारणा और ध्यान, समाधि के प्रथम दो स्तर हैं। मन के समाधि के स्तर पर ऊँचा उठने के बाद अपने सूक्ष्म शरीर के ऊपर पूर्णतः अधिकार हो जाता है। 'सम्' अर्थात् सम्यक् रूप से 'यम्' अर्थात् नियन्त्रण। इन तीनों साधनों (साधनत्रय) को संयम कहते हैं। क्योंकि इसके द्वारा मन और बुद्धि सम्पूर्ण रूप से अपने वश में हो जाते हैं।

तज्जयात् प्रज्ञालोकः ।।५ ।।

संयम से योगी के चित्त में ज्ञान का आलोक प्रकाशित होता है।

व्याख्या – मन पूर्णतः नियन्त्रित, संयमित होने पर ज्ञान -प्राप्ति में कोई बाधा नहीं होती। जिस वस्तु को जानने की इच्छा होती है, वह वस्तु ज्ञात हो जाती है। इस संयमित मन के द्वारा ही ऋषि लोग धर्मतत्त्व का अनुभव करते थे। यहाँ तक कि आधुनिक वैज्ञानिकों में भी कोई-कोई संयमित मन की सहायता से बाह्यजगत के, संसार के अनेकों तत्त्वों को ज्ञात किये हैं, अनुसंधान किये हैं। इस संयमित मन के द्वारा इस सृष्टि के, इस संसार के भीतर का सब कुछ जाना जा सकता है। इसके बाद आनेवाले सूत्रों से ये बातें अच्छी तरह से समझ में आ जायेंगी।

तस्य भूमिषु विनियोगः ।।६ ।।

इस संयम का क्रमशः अभ्यास करना चाहिये।

व्याख्या – निम्न-भूमि से साधना करते-करते, ज्ञान प्राप्त करते-करते मन उच्च भूमि में उठ सकता है। किन्तु क्रमशः मन को निम्न से ऊँचा उठाने का प्रयास न करके अचानक किसी उच्च सूक्ष्म विषय में संलग्न करने की चेष्टा करने से ज्ञान की प्राप्ति सम्भव नहीं होती है।

त्रयमन्तरंगम् पूर्वेभ्यः ।।७ ।।

– पूर्व वर्णित साधनों की अपेक्षा ये तीनों (धारणा-ध्यान और समाधि) साधन अन्तरंग हैं।

तदपि बहिरंगम् निर्बीजस्य ।।८ ।।

– किन्तु ये अन्तरंग साधनत्रय (धारणा, ध्यान और समाधि) भी निर्बीज समाधिकी तुलना में बहिरंग होते हैं।

व्याख्या – योग के आठ अंगों में प्रथम पाँच, योग के लिये मानसिक तैयारी मात्र हैं। चित्त-वृत्तियों के निरोध हेतु सहज साधना है – धारणा, ध्यान और समाधि। इसीलिये इन्हें समाधि-प्राप्ति के लिये 'अन्तरंग साधन' कहते हैं। इस समाधि की सहायता से योगी मन को उच्च-से-उच्च स्तर पर उठाते-उठाते, जब शुद्ध मन प्रकृति की सीमा क्षेत्र को पार कर निर्गुण ब्रह्म की अनुभूति (निर्बीज समाधि) को प्राप्त करता है, तब वह देखता है कि मन और बुद्धि के साथ मेरा सम्बन्ध कभी नहीं था। मैं भ्रम के कारण अपने को मन और बुद्धि समझता था। इस मन-बुद्धि की सहायता से मैं समाधि में जाकर अपने स्वरूप का सान्निध्य, सामीप्य पाया हूँ। मेरे लिये अब कुछ भी करणीय नहीं है अर्थात् अब मेरा कोई कर्त्तव्य नहीं है। धारणा, ध्यान और समाधि ये सूक्ष्म-शरीर की केवल क्रियायें हैं। इनके साथ मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। इसीलिये अब ये बहिरंग हैं अर्थात् बिल्कुल पराये हैं।

व्युत्थान निरोधसंस्कारयोरभिभवप्रादुर्भावौ निरोधक्षणचित्तान्वयो निरोधपरिणामः ।।९ ।।

जब मन की चंचलता का नाश होता है और निरोध-संस्कार का उदय होता है, तब चित्त निरोध-परिणाम को प्राप्त होता है। जब अचंचल मन में निरोध-शक्ति का उदय होता है, तब मन में नियन्त्रण शक्ति आती है।

तस्य प्रशान्तवाहिता संस्कारात् ।।१० ।।

अभ्यास के द्वारा इसमें स्थिरता आती है।

व्याख्या – लाखों वर्षों तक बाह्य संसार में चक्कर लगाकर निरन्तर आँधी-तूफान (घात-प्रतिघात) सहने के बाद, तब कहीं थोड़ा-सा वैराग्य का उदय होता है। उसके बाद बहुत परिश्रम करने के बाद मन संयमित होता है। मन का संयमित होना, निरोध होना ही अन्तिम उद्देश्य नहीं है, यह तो आध्यात्मिक साधना का प्रथम सोपान है। इसके बाद भी बहुत दिनों तक मन को संयमित रखकर अग्रसर होना होगा, ऐसा नहीं करने से कैवल्य की प्राप्ति सम्भव नहीं है।

❑ ❑ ❑ ❑ ❑ ❑ ❑ ❖ (क्रमशः) ❖ ❑ ❑ ❑ ❑ ❑ ❑ ❑

स्वामी विवेकानन्द के संस्मरण

लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक

(धन्य थे वे लोग, जिन्होंने स्वामीजी के काल में जन्म लिया तथा उनका पुण्य सान्निध्य प्राप्त किया। उनके प्रत्यक्ष सम्पर्क में आनेवाले अनेक लोगों ने अपनी अविस्मरणीय स्मृतियाँ लिपिबद्ध की हैं, जो विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं तथा ग्रन्थों में प्रकाशित हुई हैं। प्रस्तुत संस्मरण अद्वैत आश्रम द्वारा प्रकाशित 'Reminiscences of Swami Vivekananda' ग्रन्थ से गृहीत तथा अनुवादित हुआ है। – सं.)

लगभग १८९२ ई. की बात है। शिकागो की विश्व-प्रदर्शनी में हुए सुप्रसिद्ध धर्म-महासभा के पूर्व, एक बार मैं मुम्बई से पूना लौट रहा था। विक्टोरिया टर्मिनस[१] स्टेशन पर मेरे डिब्बे में एक संन्यासी ने प्रवेश किया। कुछ गुजराती सज्जन उन्हें विदा करने आये हुए थे। उन लोगों ने हमारा औपचारिक परिचय कराया और संन्यासी से कहा कि वे अपने पूना-निवास के दौरान मेरे घर पर ठहर जायँ। हम लोग पूना पहुँचे और उन संन्यासी ने आठ या दस दिन मेरे यहाँ निवास किया। नाम पूछने पर उन्होंने केवल इतना ही बताया कि वे एक संन्यासी हैं। उन्होंने वहाँ कोई सार्वजनिक व्याख्यान नहीं दिये। घर पर ही वे प्राय: अद्वैत दर्शन तथा वेदान्त पर चर्चा करते थे। वे लोगों से ज्यादा मिलते-जुलते भी नहीं थे। उनके पास रुपये-पैसे बिल्कुल भी न थे। एक मृगचर्म, एक या दो वस्त्र और एक कमण्डलु – बस, ये ही चीजें थीं। उनकी यात्राओं के दौरान कोई भी उनके इच्छित स्टेशन का टिकट खरीद दिया करता था।

चूँकि महाराष्ट्र की महिलाएँ परदा प्रथा द्वारा बाधित नहीं हैं, अत: स्वामीजी ने हार्दिक आशा व्यक्त की थी कि बौद्ध काल के प्राचीन योगियों की भाँति सम्भव है कि यहाँ के उच्च वर्ण की कुछ विधवाएँ केवल धर्म तथा आध्यात्मिकता के प्रचारार्थ अपना जीवन अर्पित कर देंगी। मेरे ही समान स्वामीजी का भी मत था कि श्रीमद्-भगवद्-गीता हर व्यक्ति को त्याग का नहीं, अपितु अनासक्त भाव से फल की इच्छा छोड़कर कर्म करने का उपदेश देती है।

उन दिनों मैं हीराबाग में स्थित डेक्कन क्लब का सदस्य था, जिसमें हर सप्ताह सभा का आयोजन हुआ करता था। ऐसी ही एक सभा में स्वामीजी भी मेरे साथ गये थे। उस संध्या को काशीनाथ गोविन्दनाथ ने किसी दार्शनिक विषय पर बड़ा सुन्दर व्याख्यान दिया। उसके उत्तर में किसी को कुछ भी नहीं कहना था। परन्तु स्वामीजी उठे और धारा-प्रवाह अंग्रेजी में सहज भाव से उसी विषय का दूसरा पक्ष प्रस्तुत किया। इस प्रकार वहाँ उपस्थित सभी लोग उनकी महान् क्षमताओं के कायल हो गये। इस घटना के कुछ दिनों बाद ही स्वामीजी पूना से चले गये।

दो या तीन वर्ष बाद स्वामी विवेकानन्द, धर्म - महासभा और उसके बाद अमेरिका तथा इंग्लैंड – दोनों स्थानों में मिली अपनी विश्वव्यापी ख्याति के साथ भारत लौटे। वे जहाँ कहीं भी गये, उन्हें अभिनन्दन-पत्र प्रदान किया गया और ऐसे प्रत्येक अवसर पर उन्होंने एक हृदय-स्पर्शी व्याख्यान दिया। मैंने कुछ समाचार-पत्रों में उनका चित्र देखा और चेहरे की समानता देखकर मैंने सोचा कि ये ही संन्यासी तो मेरे घर में ठहरे थे। मैंने उन्हें पत्र लिखकर पूछा कि क्या मेरा अनुमान सही है और साथ ही उनसे अनुरोध किया कि कोलकाता जाते समय वे कृपया पूना होते हुए जायँ। मेरे पत्र का भावपूर्ण उत्तर देते हुए स्वामीजी ने सूचित किया था कि वे वही संन्यासी हैं और उस समय पूना आने में अपनी असमर्थता पर खेद व्यक्त किया था। वह पत्र अब उपलब्ध नहीं है। १८९७ ई. में केसरी सम्बन्धी मुकदमे की समाप्ति के बाद अन्य बहुत-से राजनीतिक तथा व्यक्तिगत पत्रों के साथ ही नष्ट कर दिया गया होगा।

इसके बाद, कोलकाता-कांग्रेस (१९०१ ई.) की बैठकों के बीच एक बार मैं कुछ मित्रों के साथ रामकृष्ण मिशन का बेलूड़ मठ देखने गया। वहाँ स्वामी विवेकानन्द ने बड़ी हार्दिकता के साथ हमारा स्वागत किया। हमने वहाँ चाय पी। हम लोगों की बातचीत के दौरान स्वामीजी ने विनोदपूर्वक कहा कि क्या ही अच्छा होता यदि मैं संसार त्यागकर बंगाल में उनका कार्य सम्भाल लेता और वे स्वयं महाराष्ट्र में जाकर वही कार्य जारी रखते। उन्होंने कहा था, "इसलिये कि व्यक्ति दूर के अंचल की अपेक्षा अपने ही अंचल में उतना प्रभाव-विस्तार नहीं कर पाता।"

(वेदान्त केसरी, जनवरी १९३४)

१. अब यह छत्रपति शिवाजी टर्मिनस स्टेशन कहलाता है।

परम मुक्ति का मार्ग

स्वामी रामकृष्णानन्द

मनुष्य एक चंचल तथा असन्तुष्ट स्वभाव के साथ जन्म लेता है। शक्ति, ज्ञान तथा सम्पदा – चाहे जितनी भी बड़ी मात्रा में प्राप्त हों, पर उनके सीमित होने के कारण मनुष्य, निम्नतर पशुओं के समान उनसे सन्तुष्ट नहीं हो सकता। हर व्यक्ति अपनी वर्तमान अवस्था से ऊपर उठने के लिये उत्सुक है। वस्तुत: मानव-जीवन का अर्थ है – आगे बढ़ने के मार्ग में पड़नेवाली बाधाओं के साथ निरन्तर संघर्ष करते रहना।

यहाँ कोई-कोई आपत्ति उठा सकते हैं कि आलसी व्यक्ति ऐसे संघर्षों को नापसन्द करते हैं, अत: वे लोग इस नियम के अपवाद-स्वरूप हैं। परन्तु आलसी व्यक्ति तो तथाकथित सक्रिय व्यक्ति से भी कहीं अधिक सक्रिय है, क्योंकि एक अति सक्रिय व्यक्ति को भी एक कुटिया बनाने में कुछ घण्टे लग सकते हैं, पर आलसी व्यक्ति तो क्षण भर में ही बड़े-बड़े हवाई किले बना लेता है। श्रीकृष्ण कहते हैं – "कोई भी व्यक्ति क्षण भर के लिये भी निष्क्रिय नहीं रह सकता।" हर व्यक्ति प्रकृति के द्वारा सक्रिय होने को मजबूर किया जाता है। आलसी व्यक्ति की भी अच्छी चीजों का भोग करने की इच्छा दूर नहीं हुई है। कामनाएँ और तृष्णाएँ – एक सक्रिय व्यक्ति की अपेक्षा आलसी व्यक्ति पर कहीं अधिक हावी रहती हैं, परन्तु वह अपने आलस्य से इतना अभिभूत रहता है कि वह केवल कल्पना में ही उनका रसास्वादन करके सन्तुष्ट रहता है। अधिक सुख, अधिक ज्ञान और अपनी इच्छित वस्तु की प्राप्ति के लिये अधिकाधिक स्वाधीन होने की इच्छा – संक्षेप में एक दास के स्थान पर स्वामी होने की इच्छा की पूर्ति के लिये ही मानवता का महान् संघर्ष जारी है। प्रत्येक व्यक्ति इसी लक्ष्य की ओर अग्रसर हो रहा है।

इस दिशा में उसकी इच्छा तथा प्रयास की तीव्रता पर ही उसकी सफलता निर्भर करती है। मानव में निहित उसकी अन्तरात्मा सर्वदा अपना अनन्त स्वरूप व्यक्त करना चाहती है और कभी दबाया जाना पसन्द नहीं करती। यह इस बात का द्योतक है कि हम स्वभाव से ही अपने सच्चे स्वामी हैं। अपनी परिस्थितियों से विवश होने के बावजूद हम सोचते हैं कि हम सचमुच ही अपने स्वामी हैं। कचहरी का नौकर भी अपने घर का मालिक होता है। दास होकर भी वह अपने घर में, शायद राजकीय विलासिताओं से भी काफी अधिक मात्रा में, आनन्द का उपभोग करता है।

अत: परिस्थितियाँ चाहे जितनी भी बुरी हों, वे हमारी स्वाभाविक स्वाधीनता को पूर्णत: मिटा नहीं सकतीं। कभी-न-कभी हम इसे निश्चित रूप से प्रकट कर सकेंगे। परिस्थितियाँ केवल हमारे स्वरूप को हमारी दृष्टि से छिपा देती हैं और हमें उसके उल्टे स्वरूप पर विश्वास करने को मजबूर करती हैं। बादल सूर्य को कभी प्रभावित नहीं कर सकते और सूर्य सर्वदा ही बादलों में छिपा नहीं रह सकता। कौओं के घोसलों में पली हुई कोयलें कुछ काल तक स्वयं को कौआ ही समझती हैं, परन्तु शीघ्र ही उनका अपना स्वभाव प्रकट हो जाता है और वे कौओं का संग त्याग देती हैं। परिस्थितियाँ चाहे जितनी भी प्रतिकूल हों, वे उनके स्वरूप को दबाये रखने में असमर्थ हैं। मनुष्य के साथ भी ऐसा ही है। उसका स्वाधीन-स्वरूप (स्वत: ही) अभिव्यक्त हो उठता है।

अपने बाल्यकाल से ही हम प्रतिबन्ध से घृणा करते हैं। यद्यपि हम स्वाधीनता से प्रेम करते हैं, तथापि वस्तुत: हम स्वाधीन नहीं हैं। यद्यपि हम आनन्दप्रिय हैं, परन्तु बिना कठोर परिश्रम किये तथा कष्ट उठाये हमें आनन्द नहीं मिल सकता। हम कष्ट से घृणा करते हैं, परन्तु यह बिना हमारी सहमति के ही हमारे जीवन में घुस आता है। ऐसी हालत में, ऐसे घुसपैठों के प्रति असावधानी बरतना सुरक्षित नहीं है, क्योंकि ऐसा करके हम दु:खों के हाथ के खिलौने बन जाते हैं। हमें इन दुखों को दूर करने और अपने प्रिय सुखों को प्राप्त करने के लिये कठोर संघर्ष करना होगा।

इसके लिये पहली जरूरत है – हर प्रकार के प्रलोभनों से मुक्त रहना। इसके लिये हमें अपना चरित्र-निर्माण करना होगा और इस हेतु कुछ वर्षों के लिये अपनी स्वाधीनता की बलि देकर निष्ठा तथा नियमपूर्वक स्वयं को अच्छे अभ्यासों में लगाये रखना होगा। जब यह अभ्यास हमारे लिये स्वाभाविक हो जाय, तब समझ लेना होगा कि हमारे चरित्र का निर्माण हो चुका। जब तक हममें किसी वस्तु के लिये सुदृढ़ निष्ठा का भाव नहीं है, तब तक हम इन्द्रियों के गुलाम हैं। जब तक हमारे पास अग्रसर होने के लिये कोई आदर्श नहीं है, तब तक हमें अपनी क्षुद्र प्रवृत्तियों के अनुसार चलना होगा। एक चरित्रहीन व्यक्ति सभी सांसारिक सुखों का गुलाम होता है। पहली दृष्टि में ही उसे जो कुछ सुखद प्रतीत होता है, वह परिणामों की परवाह किये बिना ही अन्धे-जैसा, उसके पीछे चल पड़ता है। कामनाओं तथा तृष्णाओं की चिर-अतृप्त आग से तुलना की गयी है। अत: जो लोग सोचते हैं कि कामनाओं की पूर्ति के द्वारा उन्हें समाप्त किया जा सकता है, वे बड़ी नासमझी के फलस्वरूप उसके लिये कठोर श्रम करते रहते हैं। पृथ्वी पर ऐसा कोई भी भोजन या पेय नहीं है, जो हमारी भूख-प्यास को सदा के लिये दूर कर सके।

राजा ययाति का जीवन, इच्छाओं के इस अपूरणीय स्वभाव का उदाहरण है। उनका जीवन यह स्पष्ट रूप से दिखाता है कि इन्द्रियों के आदेशानुसार चलकर हम उन्हें कभी सन्तुष्ट नहीं कर सकेंगे। जीवन भर इच्छाओं की पूर्ति के द्वारा उनकी सन्तुष्टि की चेष्टा करने के बाद राजा को यह बात स्वीकार करनी पड़ी – "जैसे अग्नि में घी की आहुति देते रहने पर, वह और भी अधिक प्रबल होकर जलने लगती है, वैसे ही कामनाओं का उपभोग करने से वे दूर न होकर, बल्कि और भी बढ़ती जाती है।" जो मालिक कभी सन्तुष्ट ही न होता हो, उसकी सेवा करना न केवल निरर्थक, बल्कि बड़ा झंझट-भरा भी है, क्योंकि वह तुम्हें क्षण भर भी चैन से नहीं रहने देगा। ऐसा सेवक न तो कभी विश्राम पा सकता है और न कभी स्वयं का स्वामी हो पाने की आशा कर सकता है। दुर्भाग्यवश सभी लोग इसी तरह के दास हैं। इस जगत् में मिलें भी तो, बहुत कम लोग ही ऐसे मिलेंगे, जो अपनी कामनाओं और तृष्णाओं के आदेशानुसार नहीं चलते।

खतरे से परिचित हो जाने के बाद हमें उससे दूर रहना होगा। एक बार अपनी उँगली जला लेने के बाद दुबारा उसी आग में उँगली डालनेवाला व्यक्ति महामूर्ख कहलाता है। हम सभी स्वामी बनना चाहते हैं, परन्तु सच्चाई तो यह है कि हम मूर्खतापूर्वक अपनी इन्द्रियों के दास बन जाते हैं। इन्द्रियों के संयोग से उत्पन्न होनेवाले सुखों की मदिरा को पी-पीकर हम अपने आदर्श को भूल जाते हैं और इसके फल-स्वरूप दु:ख भोगते हैं। इस प्रकार हम सर्वदा अपना लक्ष्य भूलकर मिथ्या सुखों के कीचड़ में लोटना पसन्द करते हैं।

हमारे द्वारा बताये गये 'स्वामी' शब्द का उच्चतर तात्पर्य, आम तौर पर समझ में नहीं आता। हम प्राय: एक धनी व्यक्ति को स्वामी और उसके कर्मचारियों को सेवक मानते हैं; परन्तु सच कहें तो नौकर लोग ही सच्चे स्वामी हैं, क्योंकि वे अपना काम स्वयं ही कर लेते हैं, जबकि तथाकथित स्वामी उन्हीं का गुलाम है, क्योंकि वह उन लोगों के बिना लाचार हो जाता है। जो बात एक धनाढ्य व्यक्ति के विषय में सच है, वही बात एक राजा या सम्राट् पर भी लागू होती है। तो फिर सिकन्दर और नेपोलियन जैसे महान् विजेताओं के विषय में क्या कहा जाय? क्योंकि वे लोग तो आत्मनिर्भर थे और कभी पूरी तौर से अन्य लोगों पर निर्भर करने में विश्वास नहीं करते थे। वे लोग कभी विलासिताओं के शौकीन नहीं थे और हमेशा सक्रिय तथा साहसी बने रहते थे। क्या ऐसे लोगों को हम 'स्वामी' नहीं कह सकते?

इसके उत्तर में हम कहेंगे कि जिस परिमाण में वे आत्म-निर्भर थे, उस मात्रा में वे नि:सन्देह स्वामी थे, परन्तु जब तक मनुष्य के मन में कोई भी अभाव है, उसे सच्चे अर्थों में स्वामी नहीं कहा जा सकता। उनके पास जितना कुछ था, उससे वे सन्तुष्ट नहीं थे; वे और भी अधिक पाना चाहते थे, अत: वे लोग अभावग्रस्त थे। केवल उसी को स्वामी कहा जा सकता है, जिसके पास अपने लिये यथेष्ट से भी कुछ अधिक हो, जो इस पृथ्वी पर अन्य कुछ भी न चाहता हो; जो उस समुद्र के समान सर्वदा परिपूर्ण हो, जिसमें से सूर्य प्रति-दिन लाखों टन जल खींच लेता है, तो भी वह किसी प्रकार से अभावग्रस्त नहीं होता। वस्तुत: व्यक्ति जितना ही अधिक चाहता है, वह उतना ही बड़ा भिक्षुक है। ऐसे व्यक्ति को भला स्वामी कैसे कहा जा सकता है? व्यक्ति जितना ही तरह-तरह की चीजों के लिये इच्छुक होता है, उतना ही अधिक वह इन्द्रियों का दास होता है और सभी प्रसिद्ध साहसी तथा विजेता लोग इसी तरह के लोग थे। वे सर्वदा ऐसी महत्त्वाकांक्षा के ही अधीन बने रहे, जो कभी किसी चीज से सन्तुष्ट नहीं हुई; वे सदा चंचल बने रहे। वे लोग अपने क्षुद्र 'अहम्' के पुजारी थे और अपनी इन्द्रियों की सन्तुष्टि के लिये खून की नदियाँ बहा देने में भी नहीं हिचकते थे। वे लोग पूरी तौर से अपनी इन्द्रियों के द्वारा परिचालित होते हैं और ऐसे लोग भला कैसे 'स्वामी' की उत्कृष्ट उपाधि ग्रहण करने के योग्य हो सकते हैं?

तुम पूछ सकते हो – "क्या हम किसी रूप में अपनी इन्द्रियों से पृथक् हैं? जब हम एक आम चखते हैं, तो क्या हम सचमुच ही उसका रसास्वादन नहीं करते! क्या हम ऐसे आनन्दों से किसी प्रकार पृथक हैं? क्या हम देखने, सुनने, सूंघने, छूने तथा चखने की क्रिया से स्वयं को अलग कर सकते हैं?" इन प्रश्नों का उत्तर पाने के लिये हमें अपने प्रति-दिन के अनुभव में आनेवाली कुछ घटनाओं की ओर ध्यान देना होगा। जब कोई व्यक्ति एक मधुर आम का रसास्वादन करता है, तो नि:सन्देह वह स्वयं को उस आनन्द के साथ अभिन्न बोध करता है। उसका पूरा मन आम के रसास्वादन में तल्लीन हो जाता है और इसी कारण वह उसका आनन्द लेता है, परन्तु यदि उसका मन किसी अन्य वस्तु की ओर उन्मुख हो जाता है – मान लो वह किसी महत्त्वपूर्ण लेन-देन के विषय में अनुमान लगाने में व्यस्त है – तो वह व्यक्ति आम को खाते हुए भी इस बात की ओर ज्यादा ध्यान नहीं दे सकेगा कि वह मीठा है या खट्टा। वह केवल यांत्रिक रूप से ही उसे खाता रहेगा। इसी प्रकार यदि तुम्हारा मन कहीं और लगा है, तो अपनी आँखों के सामने रखा हुआ चित्र भी तुम्हें दिखायी नहीं देगा। ये उदाहरण यह दिखाते हैं कि हम बड़ी आसानी से अपने अंगों तथा साथ ही अपने दृश्यों से अपने मन को अलग कर सकते हैं। हम अपने शरीरों तथा दृश्यों से एक पूर्णत: पृथक् सत्ता हैं। ये अनुभव तथा दृश्य, या तो सुखदायी होते हैं अथवा दु:खदायी; और तदनुसार हम उनके प्रति स्वागत या घृणा का भाव रखते हैं। इस प्रकार हमारे

भीतर इच्छाओं, तृष्णाओं तथा भावनाओं का जन्म होता रहता है; शरीर में जन्म लेने के कारण ये इच्छाएँ आदि हमसे पूर्णत: पृथक् हैं। जब कोई व्यक्ति उनका दास बन जाता है, तो अपने से पृथक् किसी वस्तु की सेवा करने के कारण उसे सच्चा स्वामी नहीं कहा जा सकता।

अब यदि हम अपने मन का विश्लेषण करें, तो देखेंगे कि यह विचारों द्वारा निर्मित है। विचार भी हमारे दृष्टिकोणों, अनुभवों, अनुभूतियों, इच्छाओं आदि से मिलकर बना है और इन सबका जन्म हमारी इन्द्रियों में होता है। अत: मन भी हमसे पृथक् वस्तु है। मन का स्वभाव है चंचलता। शुद्ध आत्मा का स्वभाव है शान्तता; चूँकि उसमें इच्छा हो ही नहीं सकती और चूँकि इच्छा ही हमारी सारी क्रियाओं का मूल कारण हैं, अत: हमारी आत्मा में कोई क्रिया नहीं हो सकती। यह सर्वदा एक और सम बना रहता है, उसमें कभी परिवर्तन नहीं आता। आत्मा जब मन के साथ तादात्म्य स्थापित कर लेती है, तभी यह भ्रमपूर्वक सोचने लगती है कि वह सक्रिय है, यह या वह वस्तु पाना चाहती है और इस प्रकार अपना स्वामित्व का स्वभाव भूलकर दास में परिणत हो जाती है। आचार्य शंकर कहते हैं – "वह क्या है, जो मनुष्य को दरिद्र बना देती है? – अदम्य तृष्णा। वह क्या है, जो मनुष्य को सम्पन्न बना देती है? – पूर्ण सन्तोष।" कोई व्यक्ति चाहे खूब धनाढ्य ही क्यों न हो, महाराजा या सम्राट् ही क्यों न हो; परन्तु यदि वह असन्तुष्ट है, तो वस्तुत: वह एक दास है, क्योंकि वह अपनी इच्छाओं पर विजय नहीं पा सका है। दूसरी ओर सन्तोषी व्यक्ति के पास भले ही एक कुटिया मात्र हो या वह भी न हो, चाहे उसके पास तन ढकने को कपड़े का एक टुकड़ा भी हो या वह भी न हो, उसे जीवित रहने के लिये चाहे कुछ रूखा-सूखा भोजन नसीब होता हो या वह भी न होता हो, दुनिया उसे सम्मान की दृष्टि से देखती हो या न देखती हो – वह अपनी सभी परिस्थितियों पर पूर्ण अधिकार रखता है। वह कामनाओं के अधीन नहीं है, बल्कि कामनाएँ ही उसके अधीन हैं और वे उसे विचलित नहीं कर सकतीं। हजारों नदियाँ समुद्र की ओर प्रवाहित होती हैं, परन्तु वे सभी उसी में विलीन हो जाती हैं और समुद्र उनसे जरा भी प्रभावित नहीं होता। इसी प्रकार उस महात्मा के भीतर हजारों कामनाएँ प्रवाहित हो सकती हैं, परन्तु वे सभी उसमें विलीन हो जाती हैं। वह सर्वदा एकरस व्यक्ति बना रहता है, उसमें कोई भी परिवर्तन नहीं आता। ऐसा व्यक्ति ही सच्चा स्वामी है।

हममें से प्रत्येक व्यक्ति एक ऐसा ही स्वामी है, किन्तु भ्रमवश हम अपने मन के साथ तादात्म्य स्थापित कर लेते हैं और इस तरह स्वयं को अपने स्वरूप से भिन्न समझने लगते हैं। इस भ्रान्ति को दूर करना ही हममें से प्रत्येक का लक्ष्य होना चाहिये। हमें दीर्घ काल तक कठोर संघर्ष करना होगा और अन्त में हम निश्चित रूप से अपने सच्चे स्वरूप की अनुभूति कर सकेंगे। "वह सर्वोच्च आत्मा दुर्बल तथा कायर व्यक्ति के द्वारा अनुभूत नहीं हो सकती, न ही उसके द्वारा हो सकती है, जिसमें सजगता या सम्यक् एकाग्रता का अभाव है। इसकी अनुभूति तो उसी के द्वारा हो सकती है, जो सबल तथा सजग है तथा सम्यक् चिन्तन तथा ध्यान करता हो और उसी को ब्रह्म के सर्वोच्च लोक की प्राप्ति होती है।"

अत: सच्चे स्वामी की ऊँचाई तक पहुँचने के लिये वेद हमें सबल, सजग तथा ध्यान-परायण होने का उपदेश देते हैं। सारे बुरे प्रलोभनों का प्रतिकार कर सकने के लिये हममें यथेष्ट शक्ति होनी चाहिये। प्रलोभन कभी-कभी छद्मवेश धारण करके आते हैं और कर्तव्य के रूप में प्रकट होते हैं। उन मिथ्या मुखौटों से भ्रमित होने से बचने हेतु हमें अत्यन्त सावधान रहना होगा। अपने सच्चे स्वरूप पर निरन्तर ध्यान करने से, हम अपनी इन्द्रियों की माँग के प्रति उदासीन हो जाते हैं और अन्तत: वे अपनी माँगें बन्द कर देते हैं और हम अपने स्वामित्व के स्वरूप की निष्ठा में प्रतिष्ठित हो जाते हैं। अतएव हमें सर्वदा ध्यानपरायण रहना होगा।

महाराज और सम्राट् इस संसार पर केवल कुछ दिनों के लिये ही शासन करते हैं। परन्तु सच्चे स्वामियों के बारे में ऐसा नहीं कहा जा सकता – इस जगत् पर सर्वदा ऐसे ही महापुरुषों का शासन चलता है। महाराजा या सम्राट् बनने के स्थान पर ये लोग चरम निर्धनता का जीवन पसन्द करते हैं और आपात् दृष्टि से निम्न दशा में रहते हुए दिखकर भी सम्राटों तथा विजेताओं पर शासन करते हैं। उनका जीवन सीमित नहीं होता, उनकी शक्तियाँ अनन्त होती हैं, सारा जगत् उनका मित्र होता है, उनका आनन्द शाश्वत होता है और उनकी ऊर्जा सर्वदा अपने मानव-बन्धुओं की उन्नति में व्यय होती हैं। प्राचीन भारत के ऋषि-मुनि वनों के भीतर निर्मित कुटीरों में निवास किया करते थे। भगवान बुद्ध हाथ में भिक्षापात्र लिये सारे भारत का भ्रमण करते हुए हर व्यक्ति को जन्म-रोग-वार्धक्य तथा मृत्यु से बचाने हेतु सबको उत्कृष्ट धर्म का उपदेश देते रहे। ईसा मसीह के पास सिर रखने को एक पत्थर तक न था। वे हवा में उड़नेवाले उन पक्षियों के समान थे, जो न बोते हैं और न काटते हैं। वे इस बात की चिन्ता नहीं करते थे कि उनका अगला भोजन कहाँ से आयेगा। चैतन्य महाप्रभु के लिये आकाश ही छत और धरती ही बिस्तर था। श्री रामानुज, श्री मध्व, गुरु नानक तथा अन्य सन्तों के जीवन में भी ऐसा ही था, परन्तु ये ही जगत् के सच्चे शासक थे। ये लोग जो मार्ग बना गये हैं, मानव-जाति आज भी उन्हीं पर चल रही है। ये मार्ग ही हमें अपने सच्चे स्वरूप की अनुभूति तक ले जा सकते हैं। ❑ ❑ ❑

(The Way to Freedom लेख का हिन्दी अनुवाद)

विवेकानन्द जयन्ती समारोह, रायपुर – २००९

इस वर्ष भी 'विवेकानन्द जयन्ती' के अवसर पर रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर में विविध कार्यक्रम आयोजित किये गये। उसी के अन्तर्गत युवा छात्र-छात्राओं के व्यक्तित्व-विकास तथा चरित्र-निर्माण हेतु आश्रम के सत्संग भवन में प्रतिदिन सायं ६ बजे से विभिन्न प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया। विस्तृत विवरण निम्नलिखित है –

१ जनवरी, गुरुवार को सायंकाल ६ बजे अन्तर्महाविद्यालयीन विवेकानन्द भाषण प्रतियोगिता का विषय था – **विश्वमानव स्वामी विवेकानन्द**। कुमारी भावना ध्रुव ने प्रथम और कुमारी प्रीति वैष्णव ने द्वितीय पुरस्कार प्राप्त किया। कुमारी अन्नू पाण्डेय ने कहा, "स्वामी विवेकानन्द के जीवन की मुख्य विशेषता थी – सेवा और त्याग। इनके आकर्षण का मुख्य कारण सांसारिक माया-मोह से हटकर धार्मिक प्रवृत्ति था।" कुमारी आकृति वर्मा ने कहा, "स्वामी विवेकानन्द आधुनिक भारत के रचनाकार थे। उन्होंने समस्त धर्मों को एकता के सूत्र में बाँधा और कहा – उठो, जागो और लक्ष्य-प्राप्ति तक रुको मत।" अबोध कुमार सिंह ने कहा, "स्वामीजी ने विश्व के सबसे प्राचीन धर्म सनातन धर्म को लेकर सम्पूर्ण विश्व के धर्मों को एकता के समीकरण में बाँधा।"

श्री आर.जी. भावे, सेवानिवृत्त अतिरिक्त संचालक, उच्च शिक्षा विभाग, रायपुर ने इस सत्र की अध्यक्षता करते हुए कहा, "प्रतियोगी यदि महापुरुषों के गुणों को अपने जीवन में आत्मसात् करें, तो समाज का विकास निश्चित है। सभी महापुरुषों ने अपने ढंग से विश्वबन्धुत्व का सन्देश दिया है। इनके विचार समाज की अवस्थाओं में सुधार लाते हैं। राष्ट्र के जागरण में स्वामीजी का योगदान सर्वश्रेष्ठ है। हम आत्मनिर्भर होकर दूसरे के कष्ट को दूर करें। शक्ति और ऊर्जा का सदुपयोग करें। अशिक्षा समाज का शत्रु है। शिक्षित देश ही विकसित होता है। हम समाज को शिक्षित करें और देश का विकास करें।"

२ जनवरी, शुक्रवार को अन्तर्महाविद्यालयीन तात्कालिक भाषण प्रतियोगिता का आयोजन हुआ। प्रथम पुरस्कार विजेत्री कुमारी पूजा जैन ने 'राष्ट्रीय एकता में रेलगाड़ी का महत्त्व' के बारे में कहा, "रेलगाड़ी राष्ट्रीय एकता की प्रतीक है, क्योंकि इसमें विभिन्न जाति, धर्म तथा संस्कृति के लोग एक साथ यात्रा करते हैं।" द्वितीय पुरस्कार विजेत्री कु. अवनी बंसल ने 'दुनिया की सिमटती दूरी' पर कहा, "इस कम्प्यूटर के युग में हम विकसित तकनीकी के द्वारा विश्व से जुड़े हुये हैं, मगर इसके साथ ही अनेक समस्यायें भी हैं, जिनके समाधान हेतु अपना सारा दायित्व हमें अपने कन्धों पर लेना होगा।" कु. प्रीति वैष्णव ने 'संयुक्त परिवार की प्रभावशीलता' पर कहा, "परिवार में माता-पिता, बच्चे, दादा-दादी, पोते-पोती होते हैं। परिवार संयुक्त हो, तो बच्चों को सुसंस्कार प्राप्त मिलते हैं। संयुक्त परिवार भारतीय संस्कृति का मेरुदण्ड है।"

इस सत्र की अध्यक्षता शासकीय दूधाधारी बजरंग महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय के प्राचार्य डॉ. अरविन्द गिरोलकर ने की।

३ जनवरी, शनिवार को अन्तर्महाविद्यालयीन वाद-विवाद प्रतियोगिता का विषय था – **इस सदन की राय में भ्रष्टाचार का उन्मूलन केवल कानून की अपेक्षा आध्यात्मिक मूल्यों की शिक्षा से ही अधिक सम्भव है।** प्रथम पुरस्कार विजेता श्री सुदर्शन सराफ ने कहा, "आज भ्रष्टाचार इसलिये बढ़ रहा है, क्योंकि अपराधियों पर ईमानदारी से कानून लागू नहीं किया जा रहा है।" द्वितीय पुरस्कार विजेत्री कुमारी पूजा जैन ने कहा, "जब-जब असुरों ने अपनी सीमा को लाँघा है, तब-तब देवी-देवताओं का अवतार हुआ है। राजा राममोहन राय ने सती-प्रथा निवारण का पक्ष रखा, किन्तु इसका निवारण कानून बनने का बाद हुआ। वेसे ही राजनीति से लेकर परिवार तक भ्रष्टाचार फैला हुआ है। जब तक हम नियम पर नहीं चलेंगे। भ्रष्टाचार का निवारण नहीं होगा। जब नदी अपनी धारा में बहती है, तो विनाश नहीं करती, पर जब वह उफनती है, तो उसे रोकने के लिये बाँध बनाना पड़ता है।" मोहम्मद सईद रजा ने विपक्ष में कहा, "कानून के हाथ लम्बे होते हैं। यदि कानून को समानता से सच्चाई से लागू किया जाय तो भ्रष्टाचार को रोका जा सकता है।" कुमारी अवनी बंसल ने विपक्ष से प्रश्न उठाया, "क्या कारण है कि सोने की चिड़िया कहलानेवाला भारत आज भ्रष्टाचार की चिड़िया बनकर रह गया है?"

इस सत्र की अध्यक्षता रविशंकर विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग के सेवानिवृत्त आचार्य एवं अध्यक्ष, श्री एम. ए. खान ने की।

४ जनवरी, रविवार को अन्तर्विद्यालयीन वाद-विवाद प्रतियोगिता हुई, जिसका विषय था – **इस सदन की राय में**

प्रदेशवाद की भावना राष्ट्रहित में घातक है । प्राची देशपांडे ने कहा, "स्वामीजी ने कहा है कि हर देशवासी मेरा भाई है । भारत के हित में ही मेरा हित है । अत: हमें देश के विकास हेतु क्षेत्रीयता की नहीं, राष्ट्रीयता की भावना पैदा करनी चाहिये । 'हिन्द देश के निवासी सभी जन एक हैं, रंग रूप वेश-भाषा चाहे अनेक हैं ।' " कमलकान्त चन्द्रवंशी ने कहा, "प्रदेशवाद की भावना मानव-मानव के बीच संकुचित विध्वंस की मनोवृत्ति पैदा करती है; पूरे राष्ट्र को एक घोंघे की तरह सिमटा देती है । यदि हम राष्ट्रीय नेताओं के सिद्धान्तों तथा आदर्शों को अपनायेंगे, तो निश्चित रूप से राष्ट्र का हित होगा। हमें प्रदेशवाद की भावना को छोड़कर राष्ट्रहित की भावना विकसित करनी चाहिये ।" द्वितीय पुरस्कार विजेत्री कुमारी मेघा चौबे ने कहा, "प्रदेशवाद, क्षेत्रवाद से राष्ट्रीय सुरक्षा खतरे में पड़ जाती है । देश को क्षेत्रीयता में बाँटनेवालों को जड़ से उखाड़ फेंकना होगा ।" प्रथम पुरस्कार विजेत्री कुमारी पल्लवी दूबे ने कहा, "दिल्ली पब्लिक स्कूल राष्ट्र के अनेक मिश्रणों का संयोजन है । जम्मू-कश्मीर हमारा सिर है, तो असम और कन्याकुमारी हमारे हाथ-पाँव हैं । इन सभी से मिलकर हमारे राष्ट्र-शरीर का निर्माण होता है । यदि एक अंग कमजोर हो, तो हमारा राष्ट्र अपंग होगा । अत: हमें पूरे क्षेत्र का विकास करना चाहिये ।"

इस सत्र की अध्यक्षता शासकीय स्नात्कोत्तर महाविद्यालय, धमतरी के प्राचार्य श्री के.एन. बापट ने की ।

५ जनवरी, सोमवार को अन्तर्विद्यालयीन तात्कालिक भाषण प्रतियोगिता थी । कुमारी मेघा चौबे ने प्रथम और शाहिनी कुरैशी ने द्वितीय स्थान प्राप्त किया । सत्र के अध्यक्ष थे शासकीय दूधाधारी बजरंग महिला स्नात्कोत्तर महाविद्यालय, रायपुर के गणित के प्राध्यापक डॉ. अमिताभ बनर्जी ।

६ जनवरी, मंगलवार को अन्तर्विद्यालयीन विवेकानन्द भाषण प्रतियोगिता थी । विषय था – **स्वामी विवेकानन्द का राष्ट्र को आह्वान ।** प्रथम पुरस्कार विजेत्री कुमारी पारुल ठाकुर ने कहा, "वास्तव में महान् वही है, जो सबके लिये सभी जगह महान् रहता है । हिमालय जिसकी ऊँचाई नाप नहीं सकता, सागर जिसकी गहराई नाप नहीं सकता । स्वामी विवेकानन्द का व्यक्तित्व इतना महान है कि उन्हें न तौला जा सकता है और न ही नापा जा सकता है ।" द्वितीय पुरस्कार विजेत्री शाहिनी कुरैशी ने कहा, "स्वामी विवेकानन्द जी ने पूरे भारत का भ्रमण किया, तो पाया कि देश में अशिक्षा, गरीबी आदि कई समस्याएँ हैं, जिनका समाधान जरूरी है । उन्होंने जनता का आह्वान करते हुये कहा कि अपने धर्म को मानो, पर दूसरे के धर्मों के सार को भी ग्रहण करो । मृत्युपर्यन्त काम करो । मैं तुम्हारे साथ हूँ । जब मैं तुम्हारे साथ नहीं रहूँगा, तब मेरी आत्मा तुम्हारे साथ रहेगी ।" नागेन्द्र सिंह ध्रुव ने स्वामीजी का प्रसिद्ध आह्वान-मंत्र 'उतिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान् निबोधत' का उल्लेख किया । कुमारी मेघा चौबे ने कहा कि स्वामीजी ने युवकों का आह्वान करते हुये कहा था, "हे युवको ! राष्ट्र-निर्माण की शक्ति तुम्हारे हाथों में है । सारा ज्ञान तुम्हारे अन्दर छिपा है, उसे अभिव्यक्त करो ।"

इस सत्र की अध्यक्षता सहायक अभियन्ता, जल-संसाधन विभाग, रायपुर के श्री असीम झा ने की थी ।

७ जनवरी, बुधवार को अन्तर्माध्यमिक शाला विवेकानन्द भाषण प्रतियोगिता थी, जिसका विषय था – **मेरे जीवन के आदर्श स्वामी विवेकानन्द ।** इसमें महेन्द्र कुर्रे ने प्रथम और सुशान्त झा ने द्वितीय स्थान प्राप्त किया । कु. प्रियांशी तिवारी ने कहा, "स्वामीजी गरीबों की सेवा को ईश्वर की सेवा मानते थे । वे जानते थे कि युवा ही राष्ट्र की शक्ति हैं । इसीलिये उन्होंने राष्ट्र के नव-निर्माण हेतु युवाओं का आह्वान किया ।" कुमारी आनन्दिता शर्मा ने कहा, "स्वामीजी के विचार आज भी प्रासंगिक हैं । उन्होंने भारत को स्वाभिमान का पाठ पढ़ाया ।" सुशान्त झा ने कहा, "जीवन में आदर्श का निर्णय कठिन होता है । दिव्य गुणों से सम्पन्न स्वामीजी ही मेरे जीवन के आदर्श हैं ।" मानवेन्द्र ठाकुर ने कहा, "स्वामी विवेकानन्द दया की मूर्ति और सागर के समान गुरु-गम्भीर थे । काम, क्रोध, लोभ, मोह, आतंक आदि से आज सारा विश्व झुलस रहा है । ऐसी स्थिति में स्वामीजी के गुणों को आत्मसात् करके सारा विश्व शान्ति पा सकता है ।" घनश्याम दूबे ने स्वामीजी के आध्यात्मिक आदर्श त्याग और सेवा की चर्चा करते हुये अग्निमंत्र का पाठ किया ।

इस सत्र की अध्यक्षता करते हुये शासकीय दूधाधारी बजरंग महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय की गृहविज्ञान की प्राध्यापिका डॉ. अरुणा पलटा जी ने अपने व्याख्यान में कहा, "मैंने 'Experience of Life' नामक पुस्तक में पढ़ा है – "Truth is the foundation of life" (सत्य ही जीवन की नींव है) । मनुष्य का चरित्र मूल्यवान है । हमारा बच्चों से निवेदन है कि वे अपने चरित्र को अच्छा बनाने पर ध्यान दें । नकारात्मक बातें विष हैं । (उन्होंने दो कुत्तों की कहानी सुनाई कि कैसे एक कुत्ते की सोच सकारात्मक है और एक कुत्ते की सोच नकारात्मक है ।) लोगों के गुणों को अपने में समाहित करें और अपने दुर्गुणों को छोड़ने का प्रयास करें । बच्चो ! आपके अन्दर के जो गुण हैं, जो भावनाएँ हैं, वे ही महत्वपूर्ण हैं; घड़ी, मोबाइल, गाड़ी आदि नहीं । इस सम्बन्ध में एक कहानी है । एक गुब्बारा बेचनेवाला था । उसके पास कई रंग के गुब्बारे थे । एक लड़के ने आकर उससे काले रंग का गुब्बारा माँगा । गुब्बारेवाले ने कहा कि मेरे पास काले रंग का गुब्बारा नहीं है । लड़के ने सोचा कि शायद काले रंग का गुब्बारा नहीं उड़ता होगा, इसीलिये यह

नहीं रखता होगा। उसने गुब्बारेवाले से पूछा – क्या काले रंग का गुब्बारा आकाश में नहीं उड़ता है? गुब्बारेवाले ने उत्तर दिया। गुब्बारे में रंग का कोई महत्त्व नहीं है, इसमें मुख्य बात गैस है। इसके भीतर भरी हुई गैस के कारण ही गुब्बारा आकाश में उड़ता है। इसलिये बच्चो, आपके अन्दर जो सद्गुण हैं, उन्हीं का महत्त्व है। उसी से जीवन महान् बनता है। आपकी ऊर्जा का देश के विकास में उपयोग करने पर उसका सही दिशा में उपयोग होगा और दुरुपयोग करने पर ऊर्जा का विनाश होगा। आप देश के नव-निर्माता और देश के भविष्य हैं। आप अपने चरित्र का निर्माण करें, अपनी ऊर्जा, शक्ति और गुणों को देश के विकास में लगायें और जीवन को सार्थक बनायें।''

८ जनवरी, गुरुवार को आयोजित अन्तर्माध्यमिक शाला वाद-विवाद प्रतियोगिता का विषय था – **इस सदन की राय में जीवन की सफलता के लिये हूनर की अपेक्षा चरित्र अधिक आवश्यक है।** प्रथम पुरस्कार विजेता सुशान्त झा ने विपक्ष में कहा ''गीता में सफलता के सूत्रों का उल्लेख है – **अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम्। विविधाश्च पृथक्चेष्टा दैवं चैवात्र पंचमम्।।** इसमें कहीं भी सफलता के लिये 'चरित्र' शब्द का उल्लेख नहीं है। इस सदन में निर्णायकगण अपने हूनर के कारण ही बैठे हुये हैं, चरित्र के कारण नहीं। अत: जीवन में सफल होने के लिये हूनर की जरूरत है।'' कुमारी प्रियांशी तिवारी ने विपक्ष में कहा, ''यदि रवीन्द्रनाथ ठाकुर में हूनर नहीं होती, तो वे राष्ट्रकवि नहीं होते और उन्हें नोबेल पुरस्कार नहीं मिलता। इसी प्रकार सचिन तेंदूलकर, महेन्द्र सिंह धोनी अपने हूनर से जाने जाते हैं। नदी पार करते समय एक पंडितजी ने नाविक से पूछा – क्या तुम्हें धर्मशास्त्र का ज्ञान है? नाविक बोला – नहीं। पंडितजी ने कहा – तुम्हारा जीवन व्यर्थ है। तब तक नदी में तूफान आ गया। नाव डूबने लगी। नाविक ने पंडितजी से पूछा – क्या आपको तैरना आता है? पंडितजी बोले – नहीं। नाविक ने कहा – अब आपका जीवन समाप्त होनेवाला है। यदि आपको तैरने की कला का ज्ञान होता, तो आपका जीवन बच सकता था। नदी में प्राण हूनर से बचेगा, चरित्र से नहीं।'' सुजीत सुमेर ने पक्ष में कहा, ''समाज में वही व्यक्ति अच्छा माना जाता है, जिसका चरित्र अच्छा होता है। चरित्रवान व्यक्ति अपने जीवन के द्वारा समाज पर अच्छी छाप छोड़ता है, जिससे समाज को प्रेरणा मिलती है।'' शब्दार्थ दूबे ने पक्ष में कहा, ''चरित्र के कारण ही व्यक्ति की समाज में अलग पहचान होती है। हूनर तो एक चोर में भी होता है और एक आतंकवादी में भी, मगर उसके पास चरित्र नहीं होता। इस कारण वह घृणा का पात्र होता है। चरित्रवान व्यक्ति का समाज में सर्वत्र सम्मान होता है।'' द्वितीय पुरस्कार कु. आनन्दिता शर्मा को मिला।

इस सत्र की अध्यक्षता शासकीय दूधाधारी बजरंग महिला स्नात्कोत्तर महाविद्यालय, रायपुर के रसायन विज्ञान के प्राध्यापक डॉ. एस.के. चटर्जी ने की।

अन्तर्प्राथमिक पाठ-आवृत्ति प्रतियोगिता ९ जनवरी, शुक्रवार को हुई। इसमें कुमारी समृद्धि शर्मा ने प्रथम और मृणांक चौबे ने द्वितीय पुरस्कार प्राप्त किया। इस सत्र की अध्यक्षता शासकीय महाविद्यालय, ब्रह्मपुरी, चन्द्रपुर, महाराष्ट्र के अंग्रेजी विभाग के सेवानिवृत प्राध्यापक श्री एस. के. हाजरा जी ने की। प्रतियोगिता के सभी सत्रों का संचालन स्वामी ब्रजनाथानन्द जी ने किया।

१२ जनवरी को प्रात: ९ बजे रविशंकर विश्व-विद्यालय और रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के संयुक्त तत्त्वावधान में 'राष्ट्रीय युवा दिवस' का आयोजन विश्वविद्यालय परिसर में ही किया गया। इसमें विश्वविद्यालय की राष्ट्रीय सेवा योजना की इकाइयाँ और विवेकानन्द विद्यापीठ, कोटा के बच्चों ने भी भाग लिया। कुलपति जी, स्वामी सत्यरूपानन्द जी तथा अन्य अतिथियों द्वारा परिसर में स्थित स्वामी विवेकानन्द जी की मूर्ति पर पुष्पांजलि और पूजा-आरती के बाद संन्यासियों, ब्रह्मचारियों तथा आश्रम के विद्यार्थी-भवन के छात्रों ने वेद-मंत्रों का पाठ किया। उसके बाद विवेकानन्द विद्यापीठ, कोटा के छात्रों द्वारा मंगलाचरण तथा गान से कार्यक्रम शुरू हुआ। कार्यक्रम के विशिष्ट अतिथि स्वामी सत्यरूपानन्द जी, मुख्य वक्ता डॉ. ओम प्रकाश वर्मा जी और रा. से. यो. के समन्वयक श्री सुभाष चन्द्राकर जी थे।

विश्वविद्यालय के कुलपति श्री लक्ष्मण चतुर्वेदी जी ने कार्यक्रम की अध्यक्षता की। उन्होंने अपने सम्बोधन में कहा, ''छात्रों की आशापूर्ण नजरों को समझने की जरूरत है। मात्र पढ़ना हमारा रास्ता नहीं होगा। पढ़ने के बाद महत्त्वपूर्ण यह है कि उसे कितना समझा और आत्मसात् किया। उसका जीवन के क्रिया-कलापों में रूपायन करना होगा। विश्वविद्यालय का यह दुर्लभ सुयोग है कि आज ही इसका १५वाँ दीक्षान्त महोत्सव भी है। हमने वेद-पुराण-गीता, कुरान और बाइबिल सब कुछ पढ़ा, लेकिन किया क्या, यह चिन्तनीय है। मैंने अपने जीवन में गीता एक बार पढ़ी। मेरी दृष्टि में उसका सार है – **कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन** – तुम्हारा कर्म में ही अधिकार है, फल में कदापि नहीं। आज शिक्षक अपनी जिम्मेदारियों से भटक गया है। मैं युवकों से निवेदन करता हूँ – आप परिश्रम करें, आपके जीवन में चमक आ जायेगी। यदि आपमें शुरू से दृढ़ इच्छा-शक्ति तथा लगन होगी, तो आप अवश्य सफल होंगे। युवा देश के आधार हैं। उन्हीं के द्वारा देश का निर्माण होगा।''

कार्यक्रम में मेधावी छात्र-छात्राओं के ओजस्वी व्याख्यान हुये। कार्यक्रम का समापन विद्यापीठ के छात्रों द्वारा 'वन्दे मातरम्' के गायन से हुआ। कार्यक्रम का संचालन विश्वविद्यालय की प्राध्यापिका प्रीति लाल जी ने किया। सभी छात्रों एवं विश्वविद्यालय परिवार को आश्रम की ओर से अल्पाहार एवं 'अमृत संदेश' नामक पुस्तिका वितरित की गयी।

उसी दिन सायं ७.३० से १० बजे तक आश्रम के 'विवेकानन्द बालक संघ' ने आश्रम में नव-निर्मित पांडाल में विविध प्रकार के सांस्कृतिक कार्यक्रम को प्रस्तुत किया। जसगीत द्वारा देव-देवी वन्दना, 'जब स्वामी विवेकानन्द छत्तीसगढ़ आइन' नामक गीत का साभिनय गायन, भजन, 'तुलसी-माता' नाटिका, राउत नाचा और नाटक – 'राजस्थान के अलवर स्टेशन में स्वामी विवेकानन्द' का भी मंचन हुआ। चन्द्रशेखर बघेल ने 'पाताल चटनी' नामक गीत गाकर सबको मुग्ध कर दिया। इस गीत में भक्त माँ दुर्गा को निमंत्रण देता है और उन्हें छत्तीसगढ़ी ग्रामीण भोजन देने का वादा करता है। 'अंगार मोती मोर दाई वो' नामक सामूहिक गीत को बाल कलाकारों ने शक्तिस्वरूपा देवी को समर्पित किया। अन्त में 'रामकृष्ण शरणम्' के समूह-गान से कार्यक्रम का समापन हुआ। इस कार्यक्रम में लगभग ३० बाल कलाकारों ने भाग लिया। मुख्य कलाकार थे, गायक मुकेश यादव, प्रमुख अभिनेता निक्की साहू, दीपक साहू और संत फरिकार। स्वामीजी का अभिनय किया मनोज यादव ने। कार्यक्रम के अन्त में स्वामी सत्यरूपानन्द जी महाराज ने बच्चों को शुभाशीष और बाद में पुरस्कार प्रदान किये। कार्यक्रम का संयोजन और निर्देशन 'बालक संघ' के संचालक ब्रह्मचारी नन्द कुमार जी ने किया।

१३ जनवरी, मंगलवार को शाम ६ बजे छत्तीसगढ़ के सर्वप्रिय मुख्यमंत्री श्री रमन सिंह जी ने 'विवेकानन्द जयन्ती समारोह' का उद्घाटन किया। मुख्यमंत्रीजी ने सर्वप्रथम आश्रम-मन्दिर में जाकर भगवान श्रीरामकृष्ण का दर्शन किया तथा आश्रम परिसर में संचालित विविध गतिविधियों – विवेकानन्द पॉली-क्लीनिक, ग्रन्थालय, विवेक-ज्योति कार्यालय आदि का परिभ्रमण कर अवलोकन किया। दीप-प्रज्वलन एवं पुष्पगुच्छ समर्पण के उपरान्त रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, नारायणपुर के सचिव, स्वामी व्याप्तानन्द जी ने मुख्यमंत्री जी का शाल एवं श्रीफल से स्वागत किया तथा कार्यक्रम की अध्यक्षता भी की। विवेकानन्द आश्रम, रायपुर, छात्रावास के छात्रों द्वारा – 'मनुष्य तू बड़ा महान् है' – गीत से कार्यक्रम का शुभारम्भ हुआ।

रायपुर का विवेकानन्द आश्रम : संक्षिप्त परिचय

विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के सचिव स्वामी सत्यरूपानन्द जी ने अतिथियों का स्वागत किया तथा आश्रम के क्रिया-कलापों की संक्षिप्त जानकारी दी। विवेकानन्द आश्रम, रायपुर में निम्नलिखित सेवाएँ होती हैं – (१) विवेकानन्द पालीक्लीनिक – इसमें १८ विभाग हैं, जिनमें ४३ डॉक्टर सेवायें देते हैं। इसमें छत्तीसगढ़ की सबसे अच्छी फिजियो-थेरेपी चिकित्सा उपलब्ध है, जिसमें महिलाओं और पुरुषों के लिये अलग-अलग विभाग हैं। इसमें ३ फिजियो-थेरेपिस्ट और २ अक्यूप्रेशर-विशेषज्ञ हैं। लगभग ३५० रोगियों की प्रतिदिन चिकित्सा की जाती है। (२) विवेकानन्द ग्रन्थालय, जिसमें लगभग ५० हजार पुस्तकें हैं। (३) गरीब बच्चों के लिये सायंकाल नि:शुल्क कोचिंग सेन्टर है। (४) राहत विभाग – जिसमें गरीब लोगों को और अनाथालय को समय-समय पर कम्बल, साड़ी, कपड़े आदि प्रदान किये जाते हैं। (५) 'विवेक ज्योति' मासिक पत्रिका जो आज ४७ वर्षों से प्रकाशित हो रही है, जिसकी प्रसार संख्या लगभग २३,००० है। (६) साप्ताहिक प्रवचन और वार्षिक भक्त-शिविर आयोजित होते रहते हैं। (७) आदिवासी तथा क्षेत्रिय गरीब मेधावी बच्चों के लिये एक नि:शुल्क 'विवेकानन्द विद्यार्थी भवन' का संचालन भी होता है।

अबूझमाड़ तथा नारायणपुर के सेवा-कार्यों का प्रतिवेदन

रामकृष्ण मिशन आश्रम, नारायणपुर द्वारा परिचालित आवासीय विद्यालय के प्राचार्य, स्वामी सर्वहितानन्द जी ने वहाँ आश्रम द्वारा संचालित गतिविधियों का संक्षिप्त प्रतिवेदन प्रस्तुत किया –

"अबूझमाड़ छत्तीसगढ़ राज्य के नारायणपुर जिले में चारों तरफ से पहाड़ियों तथा घने वनों से आच्छादित है। लगभग ४००० वर्ग किलोमीटर में फैला यह क्षेत्र 'माड़िया' नामक भारत के एक अत्यन्त आदिम जनजाति के लोगों के द्वारा आबाद है, जो अब भी हजारों वर्षों से चली आ रही रहन-सहन की अपनी परम्परागत पद्धति को पकड़े हुए है। प्रतिवर्ष मानसून के दौरान समुचित यातायात एवं संचार साधनों के अभाव में जुलाई से अक्तूबर तक मानो सारी दुनिया से कटा रहता है। अब तक यह क्षेत्र सरकार के वन तथा राजस्व विभाग के रिकार्ड में नहीं आया है और आधुनिक शिक्षा, संस्कृति तथा स्वास्थ्य – सेवाओं का प्रकाश अभी तक वहाँ न पहुँच सकने के कारण, अब भी मानो यह अपने आप में एक 'अनजाना संसार' ही बना हुआ है।

रामकृष्ण मिशन ने इस बीहड़ तथा दुर्गम क्षेत्र के आदिम जनजातियों के बीच सेवाकार्य आरम्भ करने का बीड़ा उठाते हुये, २ अगस्त, १९८५ को तत्कालीन बस्तर जिले के नारायणपुर तहसील को अपना आधार केन्द्र बनाकर इसकी स्थापना की, ताकि इस भूले-बिसरे तथा पिछड़े अंचल के लोगों के बीच शिक्षा, स्वास्थ्य आदि सेवाओं के विस्तार के

द्वारा उनकी सामाजिक-आर्थिक अवस्था में सुधार लाकर, उन्हें भी राष्ट्र की मुख्य धारा से जोड़ा जा सके।

राज्य शासन के शत-प्रतिशत अनुदान तथा शुभचिन्तकों के सहयोग से यह आश्रम आदिवासियों के कल्याणार्थ निम्नांकित गतिविधियों का संचालन कर रहा है –

१. आदिवासी क्षेत्रों में शिक्षा-विस्तार

(क) मुख्यालय नारायणपुर में संस्था द्वारा संचालित विवेकानन्द विद्यापीठ एक आदर्श आवासीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय है, जिसके कुल ७६६ विद्यार्थियों में से ५०६ छात्र तथा २६० छात्राएँ अध्ययनरत हैं। इन विद्यार्थियों को स्कूली पाठ्यक्रमों के साथ-साथ खेल, संगीत, हस्तकला, कृषि एवं सांस्कृतिक तथा सामुदायिक शिक्षा प्रदान किया जाता है। संस्था के अनेक विद्यार्थी, अध्ययन के उपरान्त आज समाज में डॉक्टर, इंजीनियर, प्रोफेसर, शिक्षक तथा अन्य क्षेत्रों में प्रतिष्ठित हो चुके हैं। संस्था के विद्यार्थी फुटबाल, खो-खो, जिम्नास्टिक के क्षेत्र में राष्ट्रीय स्तर पर प्रदर्शन कर चुके हैं। इसके अतिरिक्त 'स्वामी विवेकानन्द एजुकेशनल कॉम्प्लेक्स' के माध्यम से नारायणपुर के आस-पास के १४ कि.मी. तक के क्षेत्र में स्थित विद्यालयों के ६०० गरीब विद्यार्थियों को पाठ्य-सामग्री सहित नि:शुल्क कोचिंग की सुविधा प्रदान की जा रही है, ताकि इन सभी विद्यार्थियों का शिक्षा स्तर उन्नत हो सके। मुख्यालय नारायणपुर में उपरोक्त क्षेत्र के आदिवासी युवाओं को व्यावसायिक प्रशिक्षण प्रदान करने हेतु एक सर्वसुविधा युक्त औद्योगिक प्रशिक्षण केन्द्र (आइ.आइ.टी.) की स्थापना की जा रही है, ताकि इस अंचल का हर युवा स्वाभिमान के साथ अपने पैरों पर खड़ा होकर समाज की सेवा कर सके।

(ख) अबूझमाड़ की दुर्गम पहाड़ियों के ग्राम आकाबेड़ा, कुतुल, कच्चापाल, इरकभट्टी तथा कुन्दला में 'विवेकानन्द विद्या-मन्दिर' के नाम से पाँच आवासीय विद्यालय चलाये जा रहे हैं। आकाबेड़ा तथा कुन्दला में पूर्व माध्यमिक विद्यालय और शेष ३ स्थानों में प्राथमिक शालाएँ चल रही हैं। इन विद्यालयों में शिक्षार्थियों की कुल संख्या ६१५ (४६८ छात्र तथा १४७ छात्राएँ) है।

(ग) आदिवासी युवा प्रशिक्षण केन्द्र – प्रतिवर्ष २४ आदिवासी युवकों को ड्राइविंग, मोटर मेकेनिक, इलेक्ट्रिकल फिटिंग, सिलाई, इलेक्ट्रिक वाईडिंग तथा वेल्डिंग व्यवसाय में प्रशिक्षण दिया जाता है, ताकि वे आत्मनिर्भर हो सकें।

(घ) 'विवेक-रथ' नामक आश्रम का सचल विडियो वाहन नारायणपुर के आसपास स्थित गाँवों की आदिवासी जनता के बीच नियमित रूप से ज्ञानवर्धक विषयों पर फिल्मों का प्रदर्शन करके विभिन्न प्रकार से उनकी शिक्षा ज्ञान-विस्तार में योगदान कर रहा है। हमारे ये कार्यक्रम अत्यन्त लोकप्रिय होते हैं और बड़ी संख्या में ग्रामवासियों को आकृष्ट करते हैं।

२. चिकित्सा तथा पोषण के क्षेत्र में

(क) 'विवेकानन्द आरोग्यधाम' – आश्रम में स्थित ३० बिस्तरों का अस्पताल इस अंचल की आदिवासी जनता के स्वास्थ्य विषयक जरूरतों की पूर्ति करता है। इसमें सोनोग्राफी सेमी-आटो-एनेलाइजर, बाएल-टेक-एनेस्थीसिया, एच.बी. इलेक्ट्रो-फिरेसिस, ई.सी.जी. एनेलाइजर, मल्टी पेरामीटर मॉनीटर आदि आधुनिक यंत्र तथा उपकरण और एक मध्यम आकार का फिजियो-थेरेपी विभाग भी है। आदिवासी रोगियों को इसकी सारी सुविधायें नि:शुल्क प्रदान की जाती हैं। अबूझमाड़ क्षेत्र में माताओं में खून की कमी प्राय: देखी जाती है। अत: निकट भविष्य में एक ब्लड-बैंक की भी स्थापना हेतु तैयारी चल रही है। भवन-निर्माण का कार्य हो चुका है तथा आवश्यक उपकरण और अन्य संसाधनों की व्यवस्था की जा रही है। अस्पताल से जुड़ी एक रियायती मूल्य की दवाइयों की दुकान भी संचालित है।

(ख) नारायणपुर से ३०-४० किलोमीटर की परिधि में आनेवाले बड़े ग्रामों के साप्ताहिक बाजारों में 'विवेकानन्द चल चिकित्सालय' वाहन के माध्यम से रोगियों का उपचार किया जाता है।

३. उन्नत कृषि का प्रचार-प्रसार

संस्था द्वारा कृषि-प्रशिक्षण हेतु नारायणपुर से २ किमी की दूरी पर स्थित ब्रेहबेड़ा गाँव में स्थित आश्रम के ५२ एकड़ के परिसर में 'कृषि-प्रशिक्षण केन्द्र' स्थापित हुआ है, जिसमें सम्पूर्ण नारायणपुर तथा बस्तर जिलों के सभी ब्लॉकों के तथा कांकेर जिला के अन्तागढ़ ब्लॉक के कृषकों को कृषि में उन्नत करने हेतु प्रशिक्षण दिया जाता है और कृषकों को नि:शुल्क उन्नत बीज प्रदान कर उन्नत खेती करने हेतु प्रेरित किया जाता है। इन प्रयासों के फलस्वरूप वर्तमान में प्रशिक्षण प्राप्त किसानों द्वारा सब्जी की खेती, बारिश में रोपा पद्धति द्वारा धान की खेती, शीतकाल में आलू, चना, गेहूँ, केला, भुट्टा एवं धान की खेती की जा रही है। प्रत्येक माह में किसानों का सम्मेलन किया जाता है, जिसमें किसानों की समस्याओं का निराकरण हमारे कृषि-प्रशिक्षण अधिकारियों के द्वारा किया जाता है। 'दिव्यायन' योजना के द्वारा आठवीं एवं आगे की कक्षाओं के विद्यार्थियों तथा कृषि विषय के विद्यार्थियों एवं ऊपर उल्लेखित क्षेत्र के युवाओं को डेढ़ माह एवं तीन माह के आवासीय कृषि प्रशिक्षण प्रदान करके इन्हें कृषि के क्षेत्र में आत्मनिर्भर होने की कला सिखाई जाती है। इस प्रोजेक्ट के अन्तर्गत पशु-पालन, मुर्गी-पालन एवं मत्स्य-

पालन आदि विषयों का भी प्रशिक्षण दिया जाता है।

४. आवश्यक वस्तुओं की आपूर्ति

सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अन्तर्गत संस्था द्वारा छह उचित मूल्य की दुकानें संचालित की जा रही हैं। जिसमें से एक दुकान नारायणपुर मुख्यालय में है तथा बाकी पाँच दुकानें अबूझमाड़ की दुर्गम पहाड़ियों व घने जंगलों के बीच पाँच उपकेन्द्रों – आकाबेड़ा, कुतुल, इरकभट्टी, कच्चापाल एवं कुन्दला में स्थित हैं। हमारी उचित मूल्य की दुकानों के द्वारा आदिवासियों को खाद्यान्न, राशन सामग्रियाँ एवं मिट्टी तेल आदि चीजें रियायती मूल्य पर उपलब्ध करायी जाती हैं।

५. सहयोगी संस्था – विश्वास

आश्रम की सहयोगी संस्था 'विश्वास' (विवेकानन्द इन्स्टीट्यूट ऑफ सोशल हेल्थ वेलफेयर एण्ड सर्विस) के माध्यम से आई.सी. डी.एस. परियोजना के अन्तर्गत सम्पूर्ण अबूझमाड़ क्षेत्र में ६८ आँगनबाड़ी तथा ४१ उप-आँगनबाड़ी केन्द्र संचालित है, जिससे क्षेत्र के नौनिहालों तथा गर्भवती माताओं को कुपोषण तथा संक्रामक बीमारियों से मुक्त कराने हेतु संतुलित पोषक आहार उपलब्ध कराया जा रहा है और साथ-ही इन केन्द्रों के माध्यम से प्रारम्भिक शिक्षा और माताओं को शारीरिक स्वास्थ्य का प्रशिक्षण भी दिया जा रहा है। अबूझमाड़ के प्रवेश द्वार ओरछा में केवल बालिकाओं हेतु सर्व सुविधाओं से युक्त आवासीय माध्यमिक विद्यालय संचालित है, जिसमें आश्रम के अन्य उपकेन्द्रों की भाँति समस्त सुविधायें उपलब्ध कराई गई हैं।

नारायणपुर आश्रम के कार्यों की प्रशस्ति

नारायणपुर के रामकृष्ण मिशन को जनजाति समुदाय, विशेष कर अबूझमाड़ के शिक्षा, स्वास्थ एवं समाज-कल्याण के क्षेत्र में की गई विशेष सेवाओं के लिये निम्नलिखित पुरस्कार प्राप्त हुए हैं –

(क) २७ मार्च १९९८ को मध्यप्रदेश, समाज-कल्याण विभाग द्वारा 'इंदिरा गाँधी समाज सेवा पुरस्कार वर्ष १९९५-९६' के तहत एक लाख रुपये नगद व प्रतीक चिह्न युक्त प्रशस्ति पट्टिका।

(ख) १४ अप्रैल, २००० को सामाजिक न्याय व अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली द्वारा सामाजिक सद्भाव एवं उत्थान हेतु संस्थापित डॉ. आम्बेडकर फाउन्डेशन द्वारा वर्ष १९९६ के लिये 'डॉ. आम्बेडकर राष्ट्रीय पुरस्कार' के तहत महामहिम राष्ट्रपति डॉ. के. आर. नारायणन द्वारा १० लाख नगद व प्रतीक चिह्न युक्त प्रशस्ति पट्टिका प्रदान किया गया।

(ग) ८ सितम्बर १९९६ को महावीर फाउंडेशन, चेन्नई द्वारा संस्थापित 'भगवान महावीर फाउंडेशन अवार्ड १९९६ के तहत पाँच लाख रुपये तथा प्रतीक चिह्न युक्त प्रशस्ति पट्टिका प्राप्त हुई।

(घ) १३ मार्च २००० को म.प्र. शासन, आदिम जाति कल्याण विभाग द्वारा १९९७-९८ के लिये 'डॉ. भँवरसिंह पोर्ते आदिवासी सेवा पुरस्कार' के रूप में ७५ हजार रुपये नगद तथा प्रतीक चिह्न युक्त प्रशस्ति पट्टिका प्राप्त हुई।

(ङ) १० दिसम्बर २००० को छत्तीसगढ़ शासन द्वारा २००० -२००१ के लिये 'शहीद वीर नारायण सिंह स्मृति पुरस्कार' के रूप में दो लाख रुपये नगद तथा प्रतीक चिह्न युक्त प्रशस्ति पट्टिका।''

चिकित्सकीय यंत्रों का अनावरण

इसके उपरान्त हिन्दुस्तान पेट्रोलियम कार्पोरेशन लिमिटेड (एच. पी. सी. एल.) द्वारा रायपुर आश्रम के विवेकानन्द पॉली-क्लीनिक को प्रदत्त करीब १३ लाख के मेडिकल यन्त्रों का माननीय मुख्यमन्त्री जी ने फीता काटकर उद्घाटन किया।

तदुपरान्त आश्रम में आयोजित भाषण प्रतियोगिताओं में प्रथम स्थान पानेवाले छात्र-छात्राओं के ओजस्वी व्याख्यान हुए। एच. पी. सी. एल., मुम्बई के मानव-संसाधन विभाग के महा-प्रबन्धक श्री ए. बी. पै जी ने सभा को सम्बोधित किया और रामकृष्ण मिशन द्वारा सर्वत्र किये जा रहे सेवा-कार्यों की सराहना की।

तत्पश्चात् आगत अतिथियों को उपहार प्रदान किये गये। इसके बाद मुख्यमंत्री श्री रमनसिंह जी ने सभा को सम्बोधित किया। फिर मुख्यमंत्री जी के द्वारा विजेता प्रतियोगियों ने पुरस्कार प्राप्त किये। हर प्रतियोगिता में सर्वाधिक अंक पाने वाले महाविद्यालय, विद्यालय, माध्यमिक विद्यालय और प्राथमिक विद्यालय को शील्ड प्रदान किया। रायपुर आश्रम के छात्रावास के बच्चों के 'हम होंगे कामयाब' गीत के साथ कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। इस समारोह में स्वतन्त्रता संग्राम सेनानी पद्मश्री डॉ. महादेव प्रसाद पाण्डेय, मुख्यमंत्रीजी के पिता वरीष्ठ अधिवक्ता श्री विघ्नहरण सिंहजी तथा अनेक गण्यमान्य नागरिक एवं अनेक शिक्षा संस्थानों से आगत छात्र-छात्रायें एवं उनके अभिभावक उपस्थित थे। कार्यक्रम का संचालन विवेकानन्द विद्यापीठ के सचिव, श्री ओमप्रकाश वर्मा जी ने किया।

१४ जनवरी, बुधवार से २० जनवरी, मंगलवार तक प्रतिदिन सायं ७ बजे से पं. उमाशंकर व्यास जी के 'भरत चरित' पर तात्त्विक एवं दार्शनिक प्रवचन हुये और २१ जनवरी, बुधवार से २७ जनवरी, मंगलवार तक स्वामी राजेश्वरानन्द सरस्वती 'राजेश रामायणी' जी के 'श्रीराम-चरित' पर तत्त्वमय तथा संगीतमय प्रवचन हुए।

(विवरण प्रस्तुति – विश्वनाथ गोटा और राजेश राठौर, विवेकानन्द विद्यार्थी भवन, रायपुर)